अङ्क 2
Number 2

मकर सङ्क्रान्ति 2064
14 जनवरी, 2008

चिकितुषी
CIKITUṢĪ



विद्याश्री न्यास का सांवत्स

An Annual Publicati
VIDYĀ ŚRĪ NYĀ

सम्पादक : वागीश शुक्ल
Editor : Wagish Shukla

विद्याश्री न्यास, दाऊदपुर, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित

Published by
VIDYĀ ŚRĪ NYĀSA
Daudpur, Gorakhpur

त्रिपुरारहस्य - चर्याखण्डम्

परमश्रद्धेय गुरुकल्प प्रो. नवजीवन
रस्तोगी जी के करकमलों में अर्पित,
शी. प्र. उपाध्याय
03.01.2009

सम्पादकः

डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्यायः
उपाचार्यः, सांख्ययोगतन्त्रागमविभागः
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
वाराणसी



विद्याश्री-न्यास
दाउदपुर, गोरखपुर

सन् २००८ ई०

प्रस्तावना

अब तक अप्राप्य समझे जाने वाले त्रिपुरारहस्य-चर्याखण्ड ग्रन्थ की यह पाण्डुलिपि हमें अपने परमगुरु प्रातःस्मरणीय श्रीरघुनाथ प्रसाद गोडबोले (दीक्षानाम-श्री अम्बानन्दनाथ) जी के निवास-स्थान तिलकबाडी से प्राप्त हुई। यह स्थान महाराष्ट्र प्रान्त के बुलडाणा जिले में स्थित है। वहीं पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाश्यमान 'श्रीभास्करराय-ग्रन्थावली' के लिए आवश्यक पाण्डुलिपियों की खोज करते समय इस ग्रन्थ की एक खण्डित एवं अपूर्ण पाण्डुलिपि हमें मिली थी। इसमें उक्त ग्रन्थ के मात्र प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश और अष्टादश अध्याय ही उपलब्ध हैं। श्रीगुरुचरण, भारतीय तन्त्रशास्त्र के महान् आचार्य तथा श्रीविद्योपासना के श्रेष्ठ प्रवर्तक श्रीभास्करराय भारती दीक्षित (दीक्षानाम-श्रीभासुरानन्दनाथ) की शिष्यपरम्परा में नवीं पीढी के आचार्य रहे हैं। अपने व्यक्तिगत संग्रह में इन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष, नेपाल आदि देशों से ढूँढ-ढूँढ कर आगम एवं तन्त्रशास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियों को संचित किया है। इनके अकथनीय श्रम का ही परिणाम है कि आज हम इस दुर्लभ ग्रन्थ के किंचिद् अंशों के दर्शन कर पा रहे हैं।

लगभग एक दशक से इस ग्रन्थ की पूर्णता हेतु प्रयत्नशील रहकर भी अभी तक इसके शेष अंशों को प्राप्त करने में असफल ही रहा। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वतीभवन ग्रन्थागार में इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि (सं. ८५२९३) अवश्य प्राप्त हुई है किन्तु उसमें भी मात्र अष्टादश अध्याय की ही सामग्री विद्यमान है। प्रस्तुत सम्पादन में इसकी सहायता से उक्त अध्याय में आवश्यक पाठ-संशोधन कर लिया गया है। वहाँ पर सरस्वतीभवन की पाण्डुलिपि को 'स' तथा बुलडाणा से प्राप्त पाण्डुलिपि को 'बु' संकेताक्षरों से दर्शाया गया है। ''शके १७८५ अधिकश्रावणशुक्ल १३ भौमेऽहर्गणः १८१३२४९ तः वर्षारम्भे समाप्तः'' इत्यादि पुष्पिका वाक्य से बुलडाणा के पाण्डुलिपि के लिपिकाल की जानकारी हो जाती है, किन्तु सरस्वतीभवन से प्राप्त पाण्डुलिपि में ऐसा कोई भी संकेत नहीं मिलता।

विगत आश्विन मास में आई.आई.टी. नई दिल्ली में कार्यरत गणित विषय के प्रो. वागीश शुक्ल जी से हो रही चर्चा के मध्य हमने उक्त ग्रन्थ के खण्डित स्वरूप में उपलब्ध होने की सूचना से उन्हें अवगत कराया। उन्होंने इस ग्रन्थ को इसी रूप में ही

यथाशीघ्र प्रकाशित कराने का सुझाव दिया। ग्रन्थ के खण्डित और अपूर्ण कलेवर के कारण इसके प्रकाशन में यद्यपि हमें हिचकिचाहट तथा संकोच का अनुभव हो रहा था, तथापि प्राच्यविद्याओं में अगाध आस्था रखने वाले प्रो. शुक्ल के आग्रह को हम टाल नहीं सके और इसके संस्करण की तैयारी में लग गये। सम्पादन के अनन्तर तैयार की गई प्रेस-कापी को हमने अपने विद्यागुरु प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी को दिखाकर उनका आशीर्वाद लिया और उनके निर्देशों के अनुसार इसमें आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण संशोधन भी किया। पाठ- निर्धारण की इस विधा में दो प्रकार के संकेत प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम में दीर्घ कोष्ठकों का प्रयोग है जिसके अन्तर्गत पाठों को शुद्ध करने के लिए अपनी तरफ से पाठों को जोड़ने के सुझाव दिये गये हैं। द्वितीय में लघु कोष्ठकों का प्रयोग है जिसमें पाण्डुलिपि में उपलब्ध पाठों से असहमति जताते हुए उनके स्थान पर आवश्यक पाठ हेतु यथामति सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रकार से यह ग्रन्थ सम्पादित होकर अब आप सुविज्ञ पाठकों के सम्मुख उपस्थित होने को तत्पर है। इस महनीय ग्रन्थ को इस रूप में प्रकाशित करने का एक उद्देश्य तत्तत् भावी-गवेषकों से इस ग्रन्थ की पूर्णता हेतु अनुरोध करना भी है। सम्भव है भविष्य में इस ग्रन्थ के अवशिष्ट भाग उपलब्ध हो जायें और अपने समग्र कलेवर में यह ग्रन्थ पाठकों के समक्ष उपस्थित हो जाय।

त्रिपुरारहस्य ग्रन्थ त्रिपुरा-सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण आकर ग्रन्थ है। इसे शाक्त-आगमों की कोटि में उच्च स्थान प्राप्त है। माहात्म्य, ज्ञान और चर्या नाम से यह तीन खण्डों में वर्गीकृत है जो क्रमश: अधिकारी भेद से साधकों और उपासकों को उत्तरोत्तर आवश्यक संस्कार प्रदान करता है। माहात्म्य-खण्ड में भगवती त्रिपुरा का माहात्म्य वर्णित है। उसके श्रवण एवं मनन से भगवती त्रिपुरा में ज्ञान का अधिकार प्राप्त होता है जिसके लिए ज्ञान-खण्ड की उपयोगिता है। तदनन्तर भगवती त्रिपुरा के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान, आत्मा में संचरित होकर, उपासना का अधिकार प्रदान करता है और तब उपासकों के लिए चर्याखण्ड उपयोगी हो जाता है। इस प्रकार से इस ग्रन्थ के तीनों खण्ड परस्पर एक-दूसरे से उत्कृष्टतर सिद्ध होते हैं। चर्याखण्ड की विषय-वस्तु अत्यन्त गुप्त एवं रहस्यमय है, जिसका सम्यग् ज्ञान सम्प्रदाय के माध्यम से ही सम्भव होता है। योग्य गुरु से दीक्षा लिए बिना इस उपासना में किंचित् मात्र भी गति सम्भव नहीं है।

इस ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि हारितायन हैं। इनका अपर नाम सुमेधा भी है। उन्होंने दत्तात्रेय और परशुराम के संवादरूप इस आर्ष ज्ञान को देवर्षि नारद को सुनाया था। दत्तात्रेय के उपदेश के पूर्व महर्षि संवर्त ने भी परशुराम को यह ज्ञान दिया था, किन्तु उस समय वे उसको धारण नहीं कर सके थे। पुन: दत्तात्रेय के द्वारा माहात्म्यश्रवण कराने पर वे ज्ञान-काण्ड के अधिकारी बने थे।

पुरा यत्राह संवर्तो मया स्वभ्यर्थितः पथि।
तन्मया नैव विदितमंशेनापि तदा ननु॥

विस्मृतं च मया यस्मात् प्राङ् न पृष्टं गुरुं प्रति।
माहात्म्यं त्रिपुराशक्तेः श्रुतं श्रीगुरुवक्त्रतः॥

—त्रिपुरारहस्य, ज्ञानखण्ड (१.२७-२८)

इस आगम-ज्ञान के अवतरण के क्रम में क्रमशः आदिनाथ-शक्ति-सदाशिव-ईश्वर-रुद्र-विष्णु-ब्रह्मा आदि का नाम आता है। मर्त्यलोक में उक्त ज्ञान को महाविष्णु के स्वरूपांश दत्तात्रेय ने श्रीकण्ठ के मुख से प्राप्त कर परशुराम को और परशुराम ने सुमेधा को प्रदान किया है।

तद्रहस्यं महापुण्यं शिववक्त्रैकगोचरम्।
आदिनाथाच्छक्तिमुखात्सदाशिवतुरीयकात् ॥

रुद्राद्विष्णोर्मया लब्धं नान्यो जानाति कश्चन।
मर्त्ये लोके महाविष्णोरंशो दत्तगुरुः स्मृत.॥

तेन श्रीकण्ठमुखतः श्रुतं स्वांशे समाक्षिपत्।
भार्गवः सोऽपि गुर्वाज्ञावशेन प्रोक्तवान् महीतले॥

सुमेधसे स्वशिष्याय स सम्प्रति महीतले।
चिकीर्षुर्ग्रन्थरूपेण हालास्यं समुपस्थितः॥

—त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड (२.३४-३७)

ब्रह्मा जी की प्रेरणा से सुमेधा ने हालास्यपुर में विराजित मीनाक्षी देवी के सान्निध्य में रहकर प्रतिदिन चार-चार अध्यायों की रचना कर इस ग्रन्थ को छत्तीस दिनों में पूर्ण किया है।

इस प्रकार द्वादशसाहस्त्री संहिता का यह ग्रन्थ कुल एक सौ बारह अध्यायों में प्रणीत है। उपलब्ध प्रथम माहात्म्य-खण्ड अस्सी अध्यायात्मक और छः हजार छः सौ सत्तासी श्लोकात्मक तथा द्वितीय ज्ञान-खण्ड बाईस अध्यायात्मक और दो हजार एक सौ तिरसठ श्लोकात्मक हैं। इस प्रकार से गणना करने पर तृतीय चर्याखण्ड में कुल बयालिस अध्याय और तीन हजार एक सौ पचास श्लोक होने चाहिए। इसके वक्ता सुमेधा और श्रोता नारद हैं।

प्रस्तुत चर्याखण्ड में मात्र नौ अध्याय और कुल पाँच सौ छः श्लोक ही उपलब्ध हैं। इसके सम्भावित शेष तैंतीस अध्यायों का प्रकाशन भगवती त्रिपुराम्बा के अनुग्रहाधीन है।

शीतलाप्रसाद उपाध्याय

वाराणसी

त्रिपुरारहस्य-चर्याखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

ॐ नमः कारणानन्दरूपा जयति सा परा।
बिन्दुचक्रोल्लसत्पञ्चब्रह्मासनविराजिता ।।१।।

देवर्षे श्रुतमेतत्ते ज्ञानखण्डं समीरितम्।
संश्रुतं मोक्षजननं साक्षाच्छिवमुखोद्गतम्।।२।।

अथ ते कथयाम्यद्य चर्याखण्डं शृणुष्व तत्।
यच्छ्रुत्वा त्रिपुराप्रीतिं लभेन्मोक्षैकसाधनम्।।३।।

त्रिपुराया बाह्यचर्यासाधनेऽत्युत्तमं त्विदम्।
एतद्विचार्य न क्वापि चर्यायां मुह्यति क्वचित्।।४।।

आदौ श्रुत्वा तु माहात्म्यं त्रिपुराया महत्तरम्।
भक्तिनिर्भरितस्वान्तो रामः पप्रच्छ वै गुरुम्।।५।।

भगवन् श्रीगुरो नाथ या सा श्रीत्रिपुराभिधा।
तामुपासितुमिच्छामि श्रुतमाहात्म्यवैभवात्(म्)।।६।।

अनुग्रहं कुरु मयि भगवन् करुणानिधे।
इति संप्रार्थितस्तेन दत्तात्रेयो दयानिधिः।।७।।

निशाम्य भार्गवे भक्तिं दृढां श्रद्धां(?द्धा) समाश्रयाम्।
आगमोक्तविधानेन दीक्षयामास वै क्रमात्।।८।।

अथाखिलां पद्धतिं तु तस्मै प्रोवाच योगिराट्।
तत्ते नारद वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु।।९।।

हारितायनसंप्रोक्तं श्रुत्वा प्रोवाच नारदः।
हारितायन सन्देहो ममात्राभून्महत्तरः।।१०।।

तत् त्वां पृच्छामि मे ब्रूहि सुस्पष्टं च सहेतुकम्।
गुरुणा भार्गवायादौ चर्या प्रोक्तेति संश्रुतम्।।११।।

त्वया तृतीयखण्डं वै चर्यारूपमुदाहृतम्।
कुत एतत् तु वैषम्यं तन्मे सम्यक् समीरय।।१२।।

इति पृष्टो नारदेन सुमेधाः प्राह वै ततः।
शृणु नारद वक्ष्यामि त्वत्पृष्टं तु सहेतुकम्।।१३।।

लोके यज्जायते कार्यं संकल्पाद् ब्रह्मणो हि तत्।
संकल्प्य ब्रह्मणादौ तु तेनाज्ञप्तस्तु वै तथा।।१४।।

अतस्तृतीयखण्डोऽसौ चर्यात्माभूत् तृतीयकः।
[1]आदौ श्रीदत्तगुरुणा शिष्याणां हितकाम्यया।।१५।।

स्वनाम्ना संहितां चक्रे त्रिपुरोपास्तिपद्धतिम्।
अष्टादशसहस्राणि ग्रन्थतोऽभूच्च संहिता।।१६।।

अधीत्य तां जामदग्न्यो विस्तृतां सागरोपमाम्।
गम्भीरगूढतात्पर्यां मन्दानां तत्र वै गतिम्।।१७।।

मत्वा सुदुर्लभां भूयः संक्षिप्य महदाशय(?या)म्।
निर्ममे सूत्रजालं वै पञ्चाशत्खण्डमण्डितम्।।१८।।

तद्गुरोर्मे जामदग्न्यादधीतं सूत्रमण्डलम्।
अधीता संहिता चापि तत्पश्चाद् गुरुनामतः।।१९।।

सूत्रजालं संहितायाः प्रतिबिम्बात्मकं भवेत्।
ग्रन्थतः षट्सहस्रं तु सूत्रं तदपि संस्थितम्।।२०।।

संहितार्थस्य संक्षेपात्मकं सूत्रमुदाहृतम्।
संहितासूत्रयोः सारं संगृहीतं मया मुने।।२१।।

तद् दत्तरामसंवादात्मकमेव पुरा कृतम्।
तदद्य ते प्रवक्ष्यामि शृणु सम्यक् समाहितः।।२२।।

दीक्षां प्राप्य भार्गवोऽथ कदाचिद् गुरुसंनिधिम्(?धौ)।
दण्डवत्प्रणतो भक्त्या बद्धाञ्जलिपुटस्तदा।।२३।।

अथ दत्तगुरुः शिष्यमाशीर्भिरनुयोज्य वै।
प्राह प्रेमभरां वाचं रामं भक्तिसुनिर्मलम्।।२४।।

जामदग्न्य किं तवेष्टं वद पृष्टो मयाऽधुना।
भक्तोऽसि तद्देयमेव सर्वं नास्त्यत्र संशयः।।२५।।

---

१. 'आदौ... पुरा कृतम्' इति पाठाः परशुरामकल्पसूत्रे भूमिकायां (पृ. १४) सम्पादकेनोद्धृताः। ग्रन्थोऽयं ओरियण्टल-इंस्टिट्यूट-बडोदरातः प्रकाशितः।

अथ रामः प्रसन्नात्मा कृताञ्जलिरुवाच तम्।
श्रीगुरो करुणासिन्धो त्वयि तुष्टे महेश्वरे।।२६।।

किमप्राप्यं भवेल्लोके सर्वं करतलस्थितम्।
उपासनाविधिं तद्वत् तत्फलं चाधिकारता(?रिताम्)।।२७।।

ब्रूहि मह्यं सुकृपया संक्षेपात् सुव्यवस्थितम्।
इत्यापृष्टो दत्तगुरुः प्रसन्नः प्राह भार्गवम्।।२८।।

शृणु राम प्रवक्ष्यामि गुह्यमेतत् समाहितः।
उपासनं देवताया बहुधा सुव्यवस्थितम्।।२९।।

तत्र संक्षेपतो भेदास्त्रिधैव शृणु भार्गव।
वैदिकी तान्त्रिकी मिश्रा चेति सा स्यादुपासना।।३०।।

वैदिकी वेदसंप्रोक्ता तन्त्रोक्ता चापि तान्त्रिकी।
मिश्रा चोभयसंमिश्रा तद्भेदं क्रमतः शृणु।।३१।।

वैदिकी तन्त्रसंस्पर्शहीना दीक्षाविवर्जिता।
केवलं वेदसंप्रोक्तवर्त्मनोपासनं भवेत्।।३२।।

फलं तु पुण्यलोकाप्तिस्तन्त्रे चाप्यधिकार(?रि)ता।
द्विजस्तत्राधिकारी स्यात् कलुषस्वान्त एव हि।।३३।।

तान्त्रिकी वेदसंस्पर्शहीना तन्त्रैकसंश्रया।
यथोक्तफलदा चान्त्यवर्णस्यैवाधिकारिता।।३४।।

मिश्रा तु मिश्रिता ज्ञेया वेदतन्त्रानुरोधिनी।
महाफलप्रदा तत्र द्विजानामधिकारिता।।३५।।

द्विजास्त्वपक्वचित्ता ये तेषां तन्त्रे कदापि न।
अधिकारो भवेत्तेषां तन्त्रस्पर्शादधोगतिः।।३६।।

तेषां न दीक्षा कर्तव्या त्वन्यथा पतितो भवेत्।
मन्त्रोपदेशमात्रं तु केवलं पूजनादिकम्।।३७।।

नोच्चार्या तत्पुरः क्वापि तन्त्रपद्धतिरन्यथा।
वक्ता श्रोता च नरकं प्राप्नुयान्नात्र संशयः।।३८।।

तैः कर्तव्यं वेदभववर्त्मना पूजनं जपः।
तान्त्रिकी केवला या तु वेदाचारविवर्जिता।।३९।।

शूद्राणां तत्र दीक्षादिसर्वं स्यात् तन्त्रवर्त्मना।
द्विजास्तत्र नाधिकृताः किन्तु सा शूद्रगोचरा।।४०।।

शुद्धचित्तद्विजानां तु भवेन्मिश्राधिकारिता।
सा तु श्रौतनित्यकर्म कृत्वाऽन्ते तान्त्रिकं कृतम्।।४१।।

तत्र दीक्षादिकं सर्वं यथोक्तं तान्त्रिकं भवेत्।
वैदिकानां तु तन्त्रोक्तफलं मुख्यं न विद्यते।।४२।।

मुख्यं फलमन्ययोस्तु द्वयोः स्यात् तारतम्यतः।
वैदिकस्य तारतम्यात् षड्ऋतूनां सलोकता।।४३।।

श्रीपुरे या षड्विधा तु प्राकारान्तरभूमिका।
ऋतूनां तत्र वसति[:] वैदिकानां क्रमाद्भवेत्।।४४।।

तान्त्रिकाणां मरकतप्राकारान्ता हि संस्थितिः।
मिश्राणां तारतम्येन महापद्मवनान्तकम्।।४५।।

निवासः सिद्ध्यति तथा देवतात्मस्वरूपिणीम्।
विज्ञाय मुच्यते बन्धात् तत्र नो विद्यते क्रमः।।४६।।

वैदिकस्य नैतदस्ति यत्तस्यानधिकारिता।
तस्यापि क्रमतः स्याद्वै राम कैश्चन जन्मभिः।।४७।।

सदाश्रयान्नास्ति पातः शुभकृच्छुभमाप्नुयात्।
पापकृद्दण्डमाप्नोति तस्मात् पापं परित्यजेत्।।४८।।

यथा लोके महाराज्ञ[:] समीपस्थो दिवानिशम्।
अस्खलंति(?लंस्ति)ष्ठति यतो महादण्डस्य सम्भवात्।।४९।।

बाह्यानां नात्र भीतिः स्यादेवमत्रापि भार्गव।
उपासकानां महती भीतिर्दण्डमहत्त(?त्त्व)तः।।५०।।

तस्मादुपासकः सम्यक् सदाचरणतत्परः।
भवेन्नो चेन्महा(?हद्)दण्डभयं तस्य भवेद् ध्रुवम्।।५१।।

।।इति श्रीत्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दत्तभार्गवसंवादे प्रथमोऽध्यायः।।१।।



द्वितीयोऽध्यायः

श्रुत्वैवं गुरुणा प्रोक्तं रामः पप्रच्छ वै गुरुम्।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि त्रिपुरासाधकस्य यत्।।१।।

पापं भवेत्तत्र कथं दण्डो भवति तद्वद।
दण्डकर्त्ता यमो वाऽन्यः किंविधो दण्ड एव च।।२।।

पापं महत्तरं किं वा चैतन्मे वद विस्तृतम्।
इत्यापृष्टो दत्तगुरुः प्राह रामं दयानिधिः।।३।।

शृणु रामः(?म) प्रवक्ष्यामि रहस्यमिदमादरात्।
अन्यस्य यादृशे पापे यो दण्डः शमनाद् भवेत्।।४।।

ततो शतगुणो दण्डस्तत्पापस्यास्य जायते।
तत्र यो वैदिको राम तस्य दण्डो यमाद्भवेत्।।५।।

मिश्रस्य तान्त्रिकस्यापि दण्डदात्री तु दण्डिनी।
वैदिकोपासकानां च न बाह्ये यमलोकके।।६।।

दण्डो भवेत् किन्तु मेरौ श्रीपुरं यत्पुरोदितम्।
तत्रत्ययमलोकेषु दण्डं तेषां महत्तरम्।।७।।

कृत्वा भूयो दण्डं राज्ञे प्रयच्छति च तं यमः।
ततस्तत्रापि दण्डेन संशोध्य तदनन्तरम्।।८।।

उपासककुले शुद्धे संयोजयति तं नरम्।
तत्रोपास्त्या[:?] क्रमेणाऽसौ मुच्यते जन्मबन्धनात्।।९।।

तान्त्रिकं मिश्रमपि च मृतं ब[द्]ध्वा नयन्ति वै।
दण्डनाथा[:] शक्तिगणा[:] स्वे लोके तत्र तं नरम्।।१०।।

दण्डेष्वत्युग्ररूपेषु पातयन्ति यथाक्रमम्।
[१]संकर्षिणी कर्षिणी च कालसंकर्षिणी तथा।।११।।

दण्डनाथाज्ञाकर्त्र्या(?र्त्र्य)स्तु मुख्यास्तिस्रो हि शक्तयः।
तासां सन्ति च प्रत्येकं शक्तयः कोटिकोटिशः।।१२।।

करालवक्त्रा भीमाङ्गा विकृतस्वरमण्डलाः।
[२]उपास्तिमार्गसंगू(?मू)ढानपराधपरान् जनान्।।१३।।

योजयन्त्युक्तदुःखेषु स्थानेषु परमातृकाः।
एवं दण्डेन संशोध्य ततः कर्मानुसारिणीम्।।१४।।

---

१. श्लोकार्द्धोऽयं त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे (७९.४०) अपि दृश्यते।
२. ''उपास्ति............परमातृका'' इत्यपि तत्रस्थितः (७९. ४०-४१) पाठः।

योजयन्ति गतिं तेषु दण्डनाथाज्ञया पराः।
तस्मात्तदुक्तदण्डभीत्या यथोक्ताचरणोद्यतः।।१५।।

भक्तिश्रद्धासमोपेतः कुर्यादितदुपासनम्।
यथोक्तोपासनपरान् देहया(?पा)तादनन्तरम्।।१६।।

मन्त्रिणीशासनपराः शक्तयः स्वगणैर्युताः।
विविधेषु विमानेषु दिव्यदेहयुतांस्तु तान्।।१७।।

सन्निवेश्य महाभोगैर्नयन्ति श्रीपुरं जवात्।
तान् पूजयन्ति मार्गेषु देवगन्धर्वकिन्नराः।।१८।।

सिद्धाद्याः स्तुतिभिर्नानाविधैः(?विधाभिः) संस्तुत्य सर्वतः।
तदुपासनतुल्ये तत्स्थाने संवेशय[न्]त्यपि।।१९।।

त्रिपुरोपासककुले ये जाता[ः] केवलं नराः।
उपासनाविरहितास्तेऽपि तत्र प्रयान्ति वै।।२०।।

प्रथमावरणे तेषां महाकालसमीपतः।
निवासो दशसाहस्त्रवर्षपर्यन्तकालिकः।।२१।।

बालादिमन्त्रमात्रा ये दीक्षया रहिता जनाः।
स्वदेवतायाः स्थाने ते निवसन्त्युक्तकालतः।।२२।।

तत्तद्दीक्षायुता ये तु यथोक्तोपासने रताः।
स्वदेवतासमीपे ते निवसन्त्युक्तकालतः।।२३।।

त्रिपुरां तिथिवर्णां ये उपासन्ते यथाविधि।
आनन्दवापिकातीरे निवसन्त्युक्तकालतः।।२४।।

ये दीक्षया युताः पञ्चदश्याः सम्यगुपासकाः।
शृङ्गारपरिखस्यान्तर्निवसन्त्युक्तकालतः ।।२५।।

ये षोडशीमनुप्राप्ता दीक्षोक्तेनैव वर्त्मना।
महापद्मवने ते वै निवसन्त्युक्तकालतः।।२६।।

आम्नायदीक्षां ये प्राप्ता[ः] षोडशीसहितां तु ते।
चिन्तामणिगृहप्रान्ते निवसन्त्युक्तकालतः।।२७।।

ये सङ्गताः पूर्णदीक्षां श्रीमहापादुकायुताम्।
महाश्रीषोडशीयुक्तां सर्वाम्नायसमन्विताम्।।२८।।

ते यथेच्छं श्रीपुरे वै निवसन्ति स्वतन्त्रतः।
दीक्षावतां तदन्ते तु महागुरुभिरीरितम्।।२९।।

ज्ञानं प्राप्य भवेन्मुक्तिः पुनरावृत्तिवर्जिता।
ये दीक्षया विहीनास्तु ते देहान्ते पुनर्भुवि।।३०।।

उपासककुले भूत्वा दीक्षां प्राप्य यथाक्रमम्।
भवन्ति मुक्ताः प्रागुक्तमार्गेणैव भृगूद्वय(?ह)।।३१।।

दीक्षास्तु विविधाः प्रोक्तास्तन्त्रभेदेषु तत्र तु।
पूर्णदीक्षा प्रधाना तु नान्या तत्सदृशी भवेत्।।३२।।

सर्वस्मादुत्तमं तत्तु यत्प्रोक्तं श्रीपुराभिधम्।
तत्र स्वतन्त्रवासोऽस्य भवेद्यावदिहेप्सितम्।।३३।।

ऋतुप्राकारमारभ्य चिन्तामणिगृहावधि।
निवसेत् स्वातन्त्र्ययोगान्न रोधस्तस्य विद्यते।।३४।।

तथापि योग्येषु च वै क्रममेतं प्रवर्तयेत्।
देहान्ते शिवसंस्कारसंस्कृतो वा भवेत्तु सः।।३५।।

चक्रराजं स्थापयेद्वा दद्याद्वा विदुषे क्रमात्।
स वसेच्चक्रराजान्तर्गुरुमण्डलमध्यतः।।३६।।

यस्त्वागमोक्तविज्ञानयुतः पूर्णाशयो महान्।
स भेदयति ब्रह्माण्डान्यनेकान्यपि सत्वरम्।।३७।।

ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु श्रीपुरं विद्यते पृथक्।
सर्वत्रायं व्रजेन्नास्य प्रतिरोधो भवेत् क्वचित्।।३८।।

ब्रह्माण्डानां बहिश्चोर्ध्वे यत्प्रोक्तं श्रीपुरं पुरा।
तत्राप्येष व्रजेदेष नास्त्यस्य गतिरोधनम्।।३९।।

जलादितत्त्वसंस्थानि यान्युक्तानि शिवागमे।
भुवनानि तेषु चायं व्रजेदप्रतिरोधनम्।।४०।।

तं दृष्ट्वा विधिविष्णवाद्या आसनेभ्यश्चलन्ति वै।
बिन्दुचक्रस्योपरि च गन्तुमि(?मी)ष्टे स योगिराट्।।४१।।

स एव विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा स सदाशिवः।
साक्षात् कामेश्वरो वापि त्रिपुरा च भवेद्धि सः।।४२।।

न तस्य हीयते शक्तिः कदाचिद्वापि कुत्रचित्।
सर्वं स भवितुं शक्तः सार्वात्म्य(?त्म्यं) प्राप्तवान् यतः।।४३।।

सङ्कोचं सर्वतो हित्वा त्रिपुरारूपमास्थितः।
एवमेष ज्ञानयोगी साक्षात् सा त्रिपुरैव हि।।४४।।

एवमेतत् प्रसङ्गोक्तमथ पापं ब्रवीमि ते।
उपासकानां यत्पापमुपास्त्यध्वसमुद्भवम्।।४५।।

तत्ते वदामि संक्षेपाद्यज्ज्ञात्वा न प्रवर्तते।
महापापमष्टविधं सर्वथा ह्यात्मनाशनम्।।४६।।

आद्यं लोभेन(?ना)सदृशे विद्यायाः प्रतिपादनम्।
तथाऽऽगमोक्तद्रव्यादेरिन्द्रियेष्वर्पणं परम्।।४७।।

अयोग्ये तु द्वि(तृ)तीयं स्याद्रहस्यानां प्रकाशनम्।
तुर्यं समर्थस्योपासाक्रमसंत्याग ईरितम्।।४८।।

पञ्चमं स्त्रीष्वपकृतिर्गुरौ षष्ठमुदाहृतम्।
सप्तमं देवतार्चादिप्रतिरोधमुदाहृतम्।।४९।।

अष्टमं त्वन्यसमंतादृष्टिरस्मिन् हि दर्शने।
इति प्रोक्तं महापापाष्टकं परमदारुणम्।।५०।।

एकैकस्याप्यस्य कृते भोगस्यान्तो न विद्यते।
दण्डनाथा(?थैः) शक्तिगणैर्महादुःखेषु योजितः।।५१।।

द्विपरार्धावसानेऽपि नैकस्मादपि मुच्यते।
तस्मादुपासको ह्येतद् वर्जयेद् यत्नमास्थितः।।५२।।

भक्तिश्रद्धामयो भूत्वा शक्त्योक्तं सर्वमाचरन्।
साधको न भयं क्वापि विन्देत् कामहतो यदि।।५३।।

यथोक्तोपासनपरः फलं महदवाप्नुयात्।
सन्ति मार्गसहस्राणि देवतोपासनाविधौ।।५४।।

देवतानां विभेदेन सम्प्रदायविभेदतः।
सर्वं पुण्यैकजननं न सन्देहोऽत्र विद्यते।।५५।।

महाफलं यदमृतं भयलेशविवर्जितम्।
न स्याच्छ्रीत्रिपुरोपास्तिं हित्वाऽन्येन कदाचन।।५६।।

लोके प्रजापतिः श्रेष्ठो जगत्स्रष्टा पितामहः।
ततो नारायणः श्रेष्ठो लोकस्थितिविधौ स्थितः।।५७।।

ततोऽपि रुद्रो भगवान् श्रेष्ठः संहारकारकः।
न तस्मात् परतः कश्चिदस्ति यः श्रेष्ठतामियात्।।५८।।

ईश्वरस्त्रितयात् श्रेष्ठो यदधीनास्त्रयस्त्विमे।
सदाशिवस्ततः श्रेष्ठः सदानुग्रहकारकः।।५९।।

न तस्मात् परतः कश्चिदस्ति यः श्रेष्ठतामियात्।
लोकनाथा इमे पूज्या नातोऽन्योऽस्ति महेश्वरः।।
ब्रह्मपञ्चकमेतत्तु नातोऽस्ति परमः क्वचित्।।६०।।

वेदाः पुराणं स्मृतय इतिहासं च(?सश्च) पञ्चमम्।
एतावदाह नैतस्मादधिकं विद्यते क्वचित्।।६१।।

ईशः सदाशिवश्चेति द्वयमागमसंस्थितम्।
पूज्या महेश्वरा एते देवदेवा न चेतरे।।६२।।

एते पञ्चापि मञ्चत्वं गताः पादतले स्थिताः।
यस्यास्तु त्रिपुरादेव्याः सैतेषां स्यात् समा कथम्।।६३।।

यस्याः पञ्चविधा शक्तिः संस्थिता तेषु पञ्चसु।
पञ्चकृत्यात्मना लोके प्रथिता सैव भार्गव।।६४।।

चिदेवानुग्रहो राम तामृतेऽनुग्रहो न हि।
आनन्दस्तु तिरोधानं तिरोधानं यतः सुखे।।६५।।

इच्छाया जायमानत्वात् सृष्टिरिच्छात्मिका मता।
सत्त्वेन जायमानत्वाद् ज्ञानशक्तिमयी स्थितिः।।६६।।

संहारस्य क्रिया मूलं क्रियाशक्तिमयस्ततः।
एतच्छक्तिविहीनत्वे शवास्ते पञ्चपूरुषाः।।६७।।

तत्तत्त्वं प्रोच्यते शक्तिः शिवो ब्रह्म सनातनम्।
वासुदेवः स भगवानादिनाथ इतीरणैः।।६८।।

द्वे कले तस्य नाथस्य कार्यता कर्तृतेति च।
कार्यता स्यात् षोडशधा कर्तृता चैकरूपिणी।।६९।।

इन्द्रियाणां तु दशकं भूतानां पञ्चकं तथा।
अन्तःकरणमित्येवं कार्यता षोडशात्मिका।।७०।।

कर्तृता स्यात् सप्तदशी कला नित्या महेशितुः।
सा कर्तृतैव त्रिपुरा स्वातन्त्र्यं शक्तिरुच्यते।।७१।।

तत्तत्त्वं द्विविधं ह्येवं वस्तुतस्त्वेकमेव हि।
कामेश्वरः कार्यतांशस्त्रिपुरा कर्तृतामयी।।७२।।

कामेश्वरीति संप्रोक्ता त्वनादिमिथुनं त्विदम्।
तत्र सारशक्तिरेव त्रिपुरा परमेश्वरी।।७३।।

पूजनं सर्वदेवानां पराशक्तेः प्रपूजनम्।
शक्तिं विना न पूजाया ग्रहणं सम्भवेत् क्वचित्।।७४।।

तस्मात् पूजा तु शक्तेः स्यात् सर्वत्र विहिता जनैः।
फलप्रदा न, शक्तिं तु विचार्यादौ विचक्षणः।।७५।।

पूजयन्ति पृथग् देवं फलं विन्दति(?न्ति) तत्तथा।
लोकेऽप्यशक्तः कुत्रापि न पूज्यः स्यात्तु भार्गव।।७६।।

आश्रयत्वाच्छिवमृते शक्तिर्नैव तु विद्यते।
इति चेन्निजसत्तात्मशक्तिहीनः शिवस्तथा।।७७।।

तस्मात् सारं शक्तिरेव सर्वत्र श्रृणु भार्गव।
चन्द्रेऽमृतांशुरिव सा सूर्ये चोष्णप्रभा इव।।७८।।

समुद्रे तोयवत् सा हि आकाशे शून्यता इव।
तदभावे न किञ्चित् तद्देवं शक्तिः शिवस्य हि।।७९।।

सा भक्तवत्सला भक्तकुशला यैव सर्वथा।
विचित्राणि शरीराणि धारयत्यात्मवैभवात्।।८०।।

तत्र मुख्यं दशविधं कुमार्यादिः परं वपुः।
तत्रापि मुख्यं कामेशवामाङ्कासनसंस्थितम्।।८१।।

देवशिल्पिस्वचातुर्यसर्वसारविनिर्मितम् ।
नगरं श्रीमहादेव्या भूषणं छत्रपादुके।।८२।।

एवंरूपा हि सा देवी सर्वलोकोत्तमोत्तमा।
सर्वेशी सर्वजननी सर्वकारणकारणम्।।८३।।

तामुपास्यैव सम्भाव्यं बुधैः परमकं फलम्।
नान्यथा सम्भवेन्मुख्यफलं कोटिसुसाधनैः।।८४।।

।। इति श्रीत्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।



तृतीयोऽध्यायः

इति श्रुत्वा दत्तगुरुप्रोक्तं रामोऽथ भार्गवः।
हृष्ट[ः] पप्रच्छ भूयस्तं प्रसन्नं दीनवत्सलम्।।१।।

भगवन् यत्प्राह भवान् त्रिपुरोपासनेन वै।
मिश्रेण प्राप्यते श्रेयो नान्यथेति विनिश्चयम्।।२।।

तच्चापि दीक्षापूर्वं स्यादिति प्रोक्तमतो वद।
दीक्षा कतिविधा त्वत्र को गुरुः शिष्य एवं च।।३।।

कः कालः को विधिस्तत्र सर्वमेतत् क्रमाद्वद।
इत्यापृष्टः प्राह तदा शृणु राम वदामि ते।।४।।

दीयते परमं(?मो) भावं(?वः) क्षीयते ज्ञानसञ्चयः।
दीक्षा महामोक्षपुरीद्वारसोपानभूमिका।।५।।

[1]विनोपनयनं यद्वत् द्विजानां सर्वकर्मसु।
न योग्यता तथाऽत्रापि विना दीक्षां भृगूद्वह।।६।।

अप्राप्य सद्गुरोर्दीक्षामज्ञात्वा गुरुपद्धतिम्।
स्वबुद्ध्या तु कृतं राम विधिना च समन्वितम्।।७।।

तथापि साधकं शीघ्रं नाशयत्येव सर्वथा।
सेवितारं यथा हन्ति चापक्वं तु रसायनम्।।८।।

तस्माद्यथावत् सम्प्राप्य दीक्षां सद्गुरुपुङ्गवात्।
उपासनं प्रकुर्वीत तथा तेष्वप्यनुग्रहम्।।९।।

विना दीक्षां तु योऽन्यस्मै मन्त्रानुपदिशेत् क्वचित्।
स प्रयाति महाघोरान् नरकान् द्रोहहेतुतः।।१०।।

आदौ गाणपतीं दीक्षां समासाद्य गणाधिपम्।
उपास्य विघ्नान् संशाम्य त्रिपुरां तदनन्तरम्।।११।।

उपासीतान्यथा विघ्नैर्विहित(?हतः) स्याद्धि सर्वथा।
केवलं वाप्युपासित्वा मन्त्रग्रहणपूर्वकम्।।१२।।

निर्विघ्नोऽनन्तरां दीक्षां गुरोरासादयेत् क्रमात्।
एतच्च विघ्नयन्त्रस्य नाशनात् त्रिपुरा पुरा।।१३।।

---

१. "विनोपनयनं" इत्यारभ्य "रसायनम्" (श्लो. ८) इत्यन्तं पाठः त्रिपुराहस्ये माहात्म्यखण्डे (७९.१९-२१) अप्युपलभ्यते।

तुष्टा महागणेशाय ददावभिमतं वरम्।
अनुपास्त्या(?स्या)दितस्त्वां ये मदुपास्तिपरायणा[ः]।।१४।।

ते विघ्नैरभिभूतास्तु भविष्यन्ति पदे पदे।
बालायाश्चापि मन्त्रिण्या दण्डराज्यः(?ज्ञ्या) अपि क्रमात्।।१५।।

दीक्षामासाद्य तत्पश्चादुपासीत क्रमेण वै।
किञ्चित् कालमुपास्यैव क्रमादेता अनुत्त(नन्त)रम्।।१६।।

हाद्यां काद्यां वापि पञ्चदशीमासादयेद् गुरोः।
गणपेनैव चेताभिस्तुष्टा युद्धसुकर्मभिः।।१७।।

त्रिपुरायास्ततः प्राप्तमेतमी(?दी)प्सितसद्वरम्।
त्रिपुरा या कुमारी सा बालात्रिपुरसुन्दरी।।१८।।

प्रतिबिम्बात्मिका तस्या महाविभवसंयुता।
कामेशवामाङ्कगतां चक्रराजरथस्थिताम्।।१९।।

[1]दृष्ट्वा बां त्रिपुरां मत्वान्पुनमात्मसुवैभवम्।
द्वेधा विभज्य चात्मानं द्विरूपा समजायत।।२०।।

अर्धात् कुमारकामेश अर्धात् स्वं रूपमास्थिता।
लघुचक्रस्थस्य वाममङ्कं सम्यक् समाश्रिता।।२१।।

मन्त्रिणी मुख्यसचिवपदसंश्रयणी यतः।
द्वारभूता महादेव्या अत आराधयेत्तु ताम्।।२२।।

स्खलनं स्याद् गच्छतां तु सर्वथा तत्र दण्डिनी।
दण्डयेत् क्रूरदण्डेन सदा क्रोधपरायणा।।२३।।

आराधिता प्रशान्ता स्यादन्यथा दण्डपातनम्।
अतः सापि समाराध्या श्रेयोर्थी(?) स्वात्मनो ध्रुवम्।।२४।।

पञ्चदश्यास्ततो दीक्षामासाद्य गुरुवर्यतः।
उपास्याधिकृतिं प्राप्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।२५।।

षोडश्यास्तु ततः पश्चाद् दीक्षामासादयेद् गुरोः।
एवं संप्राप्तदीक्षस्तु ज्ञातोपासनमार्गकः।।२६।।

सन्तोष्य सद्गुरुं सम्यग् भक्तिश्रद्धाधनादिभिः।
पूर्णां दीक्षां समादद्याद् येन पूर्णात्मता भवेत्।।२७।।

---

१. अत्र "दृष्ट्वाम्बां त्रिपुरामवाप्तनवात्मसुवैभवाम्" इति पाठः कल्पनीयः।

गुरुः सम्यक् परीक्ष्यैव शिष्यं सर्वगुणान्वितम्।
पूर्णदीक्षा(?क्षां) प्रकुर्वीत नान्यथा तु कदाचन।।२८।।

लोभात् प्रमादाद् भीत्या वा हीने कृत्वा त्विमां पराम्।
दीक्षां महापातकी स्याद् देवताशापमाप्नुयात्।।२९।।

राज्यं देयं शिरो देयं देयं सर्वस्वमप्युत।
अन्यायेन न देया स्यान्महाश्रीषोडशाक्षरी।।३०।।

यत्राम्नायास्त्वशेषेण महाश्रीपादुकाऽपि च।
महाश्रीषोडशी चापि महावाक्यचतुष्टयम्।।३१।।

स्वात्मनः पादुका चापि दीयते यत्र सा परा।
दीक्षा सर्वोत्तमा पूर्णा न देयाऽन्यायतः क्वचित्।।३२।।

अनन्तजन्मसंसिद्ध्या प्राप्यते नान्यथा क्वचित्।
गुरुः परशिवाकारः सर्वलक्षणसंयुतः।।३३।।

तृष्णाहीनो दयायुक्तस्तन्त्रविद् गुरुरुत्तमः।
द्विजेष्वाद्यो हि सुश्रेष्ठः समानो वा गुरुर्भवेत्।।३४।।

ग्र(गृ)हस्थः प्रथमाच्छ्रेष्ठो वनस्थश्च तथोत्तमः।
यतिः सर्वोत्तमो ज्ञेयः तस्माद्दीक्षा महाफला।।३५।।

इति श्रुत्वा गुरुवचो रामः पप्रच्छ संश्रयात्।
भगवन्नाथ पश्यामि यतिः स्याद्वै गुरुः कथम्।।३६।।

येन त्यक्तो वेदराशिः गायत्री चाश्रमक्रिया।
उपासनाऽपि त्यक्तातो गुरुः सोऽत्र कथं भवेत्।।३७।।

इति श्रुत्वा पुनः प्राह दत्तात्रेयो भृगूद्वहम्।
उपासनेयं न त्याज्या सर्वैरपि शुभार्थिभिः।।३८।।

यतिर्वाप्यातुरो वापि नोपास्तिं संत्यजेत् क्वचित्।
यथाशक्त्या तु कर्तव्यं न्यासपूजाजपादिकम्।।३९।।

मूलविद्याजपो वापि कर्तव्यः शक्तितः खलु।
[1]अज्ञानान्मोहतो वापि विद्योपास्तिं त्यजेत्तु यः।।४०।।

स विशेदन्धृ(न्ध)तामिश्रं(स्रं) न तस्यास्ति पुनर्गतिः।
संन्यासिनापि त्यक्तव्यं सर्वं बन्धात्मना स्थितम्।।४१।।

---

१. ''अज्ञाना....वै यत: (श्लो: ४२) इति पाठ: त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे (७९.३५-३७) अप्युपलभ्यते।

इदं मोक्षात्मकं राम श्रीविद्योपासनं तु यत्।
न तत् त्यक्तुं समुचितं ब्राह्मण्यमिद्(मिव) वै यतः।।४२।।

तस्माद् यतिर्वाप्यन्यो वा न विद्यां तु परित्यजेत्।
तस्माद्गुरुः श्रेष्ठतमो यतिर्विद्याविशारदः।।४३।।

त्रिपुरातत्त्वविज्ञानी तत्राप्युत्तम उच्यते।
शिष्यो हि कुशलो भक्तिश्रद्धायुक्तो दृढो भवेत्।।४४।।

श्रद्धाभक्तिविहीनस्तु सर्वथा नार्ह एव सा(सः)।
श्रद्धालुर्भक्तिसंयुक्त आलस्यपरिवर्जितः।।४५।।

सर्वलक्षणहीनोऽपि विद्यार्हो भार्गवेरितः।
कालस्तु शुभवेलाख्यो दोषेण परिवर्जितः।।४६।।

विषुवायनमुख्यं वा पर्वागमनिरूपितम्।
अथवा श्रीगुरुस्तुष्टो यदा कालः स उत्तमः।।४७।।

तत्तद्यन्त्रेषु कलशं संस्थाप्य जलपूरितम्।
वस्त्रपल्लवरत्नाढ्यं तत्तद् यन्त्रसुशोभितम्।।४८।।

देवतां सपरिवारामावाह्य तत्र पूजयेत्।
तत्तद्यन्त्रेषु सम्पूज्य देवतामुक्तवर्त्मना।।४९।।

गुरुः प्रसन्नहृदय उल्लासोल्लसितान्तरः।
शिष्यमाहूय संस्नाप्य सिद्धान्तं विनिवेद्य च।।५०।।

साङ्गान् मन्त्रानुपदिशेत् सम्प्रदायं प्रवर्तयेत्।
दृष्टिबन्धनपूर्वं तु मुख्यमन्त्रं निरूपयेत्।।५१।।

पूर्णदीक्षाक्रमेणैव मन्त्रे कार्या भृगूद्वह।
अन्यमन्त्रं केवलं चाप्यशक्ते समुपादिशेत्।।५२।।

न षोडशी कदाचिद्वा केवलमुपदेशयेत्।
दीक्षां विना यस्तु गुरुः षोडशीं पादुकां तथा।।५३।।

महावाक्यान्यपि तथा शिष्यायोपदिशेत् क्वचित्।
स याति नरकान् घोरान् तेन शिष्येण संयुतः।।५४।।

एतत्त्रयं समानार्थं ना(?र्थमा)त्मबन्धविनाशनम्।
या षोडशी सैव महापादुका संप्रकीर्तिता।।५५।।

या पादुका सैव महावाक्यानीत्यवधारय।
प्रज्ञानं ब्रह्म तत्राद्यमहं ब्रह्मास्मि तत्परम्।।५६।।

तृतीयं तत्त्वमस्यन्तेऽयमात्मा ब्रह्म कीर्तितम्।
एतन्महावाक्यमुक्तं चतुर्वेदसमुद्भवम्।।५७।।

एतद्योगेन दीक्षाऽपि चतुर्वेदमयी भवेत्।
अत एव पूर्णदीक्षा भवेत् सर्वोत्तमोत्तमा।।५८।।

तस्मादेवं क्रमाद् दीक्षामासाद्योपासनं चरेत्।
अदीक्षयोपासनं च महापापाय वै भवेत्।।५९।।

एवं दीक्षां समासाद्योपासनत्याग उच्यते।
तस्माद् दीक्षां समासाद्य प्रमादान्मोहतोऽपि वा।।६०।।

उपासनं परित्यज्य महापापमवाप्नुयात्।
इति ते राम संप्रोक्तं यत्पृष्टं तत्क्रमेण वै।।६१।।

।।इति श्रीत्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे तृतीयोऽध्यायः।।३।।



चतुर्थोऽध्यायः

इति श्रुत्वाऽत्रितनयभाषितं भृगुनन्दनः।
प्रणम्य भूयः पप्रच्छ जामदग्न्यः प्रसन्नधीः।।१।।

भगवन् भवता प्रोक्तं संश्रुतं तत्र सर्वथा।
सन्देहो मे महान् जातो दुःशङ्कं स्यादुपासनम्।।२।।

अनेकत्वात्तु तन्त्राणां कर्मानुष्ठानभेदनात्।
तत्तत्कर्माननुष्ठानप्रत्यवायश्रुतेरपि ।।३।।

सर्वार्थस्योपसंक्षेपो मन्दबुद्धेः कथं भवेत्।
क्वचित् तन्त्रेषु विस्तारः क्वचिदत्यन्तसंग्रहः।।४।।

कथमेकेन तत्सर्वं कर्त्तुं शक्यं भवेद्वद।
उपासनैक्ये चाङ्गानामुपक्षेपो हि युज्यते।।५।।

दैवतैक्ये ह्युपास्त्यैक्यं न सन्देहोऽत्र विद्यते।
मन्त्रभेदेऽपि नो भेदः क्वचिद्भेदो निरूपितः।।६।।

कथमत्र प्रकर्त्तव्यमशक्यं भाति मे गुरो।
पुंभेदेनापि तर्कस्य भेदाज्ज्ञातुं न शक्यते।।७।।

तस्मादेतन्ममाचक्ष्व प्रविविच्यातिसंस्फुटम्।
इत्यापृष्टो दत्तगुरुर्गूढप्रश्नेन तोषितः।।८।।

प्राह रामं जामदग्न्यं संश्लाघ्य प्रश्नमादितः।
राम सम्यक् त्वया पृष्टमेतत् सर्वार्थसाधनम्।।९।।

लोकानामुपकाराय तव प्रश्नो भविष्यति।
अत्र मुह्यन्ति बहवोऽप्यागमार्थसुवेदिनः।।१०।।

नैतत् सर्वत्र संप्रोक्तमागमेषु भृगूद्वह।
अतिगोप्यमतस्तेऽद्य प्रवक्ष्यामि महाशय।।११।।

अत्यशक्ते संग्रहोक्तिरन्येषां वितता भवेत्।
न शक्तः संग्रहपरं तन्त्रं समभिसंश्रयेत्।।१२।।

अशक्तार्थं तु संप्रोक्तं शिवेन कृपया खलु।
अशक्तः संक्षेपपरो गुरुर्यदि भृगूद्वह।।१३।।

स्वयं शक्ताय शिष्याय स्वतन्त्राद् वान्यतन्त्रतः।
निरूपयेद् विस्तृतं वै न संक्षेपं कदाचन।।१४।।

अन्यथा कर्मलोपस्य दोषेण लिप्यते गुरुः।
तत्ते व्यवस्थां वक्ष्यामि श्रृणु राम समाहितः।।१५।।

शक्तोऽत्यन्तसंग्रहात्मतन्त्रं त्यक्त्वा प्रयत्नतः।
एकं तन्त्रं समाश्रित्य सम्यक् कुर्यादुपासनम्।।१६।।

एकं तन्त्रं समाश्रित्य सम्यक् कर्म कृते तथा।
सर्वं तेन कृतं राम तच्च श्रीगुरुमार्गतः।।१७।।

तन्त्रानुक्तं सूचितं तु तथाऽन्येष्वतिदूषितम्।
अकृतं यत्कर्म राम विकल्पेन विवर्जितम्।।१८।।

तदन्यस्मादुपादेयमेष शास्त्रस्य निर्णयः।
स्वपरम्परया प्राप्तं तन्त्रोक्तं तु समाचरेत्।।१९।।

अनुक्तमन्यतो ग्राह्यं समर्थेनाप्रयोजकम्।
सर्वथा न परित्याज्यं स्वतन्त्रं गुरुणोदितम्।।२०।।

गुरुद्रोहोऽन्यथा तु स्यादतस्तन्न परित्यजेत्।
विस्तारस्त्वन्यतो ग्राह्यः स्वतन्त्रे त्वतिसंग्रहे।।२१।।

न तन्त्रोक्तं परित्याज्यमीषदप्यन्यथा पतेत्।
स्वतन्त्रोक्तं परित्यज्य योऽन्यतन्त्रं समाश्रयेत्।।२२।।

स सम्प्रदायद्रोही स्याद् देवताशापमाप्नुयात्।
यश्च शक्तः प्रमादेन मोहेनालस्यतोऽपि वा।।२३।।

संक्षेपतन्त्रोक्तपरः स नष्टः पुण्यलोकतः।
गुरूक्ततन्त्रं न त्याज्यं यदि तत्संग्रहात्मकम्।।२४।।

उपसंगृह्य तन्त्रान्तरोक्ताङ्गान्यविरोधतः।
उपासीत विस्तरेण न संक्षेपपरो भवेत्।।२५।।

विस्तृते स्वीयतन्त्रेऽपि तदुक्तं न परित्यजन्।
अन्यस्मादविरुद्धांशं यदि शक्तः समाचरेत्।।२६।।

न हीयते किन्तु फलाधिक्यमेव समाप्नुयात्।
आगमः शिववक्त्रोत्थः प्रमाणं सर्वतोऽधिकम्।।२७।।

न तं विकल्पयेदन्या[त्] प्रमाणं स्या(स्वा)श्रयात् क्वचित्।
न्यायो व्याकरणं वापि न तस्य प्रतिरोधकम्।।२८।।

तस्मात् तन्त्रानुरोधेन नेयमन्यत् प्रमाणकम्।
नान्यप्रमाणानुरोधात् तन्त्रं नेयं कदाचन।।२९।।

यथा स्वाम्यनुरोधेन भृत्या गच्छन्ति नान्यथा।
योऽन्यप्रमाणानुरोधे तन्त्रं नयति मूढधीः।।३०।।

तन्त्रभेदे विरोधस्य परिहारं शिवोदितम्।
स भवेद् देवताद्रोही शिववाक्यावहेलनात्।।३१।।

एतत्ते सर्वमाख्यातं जामदग्न्यातिसुस्फुटम्।
तन्त्रभेदे विरोधस्य परिहारं शिवोदितम्।।३२।।

।।इति श्रीत्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्त्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दत्तभार्गवसंवादे चतुर्थोऽध्याय:।।४।।



एकादशोऽध्यायः

एवं दीक्षां समासाद्य रामः(?म) साधकपुङ्गवः।
भुक्तनिद्रा समुत्थाय चोषःकाले दृढासनः।।१।।

ध्यायेन्निजे ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रदलपङ्कजम्।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं विशदं विकसच्छदम्।।२।।

अधोमुखं तदुदरे द्वादशान्तसरोरुहम्।
श्वेतमष्टदलं तच्च राजत्पूर्णेन्दुसन्निभम्।।३।।

ऊर्ध्वास्यं तत्कर्णिकायां पूर्णेन्दुसदृशाकृतिम्।
गुरुं ध्यायेच्चन्द्रनिभं पङ्कजासनसंस्थितम्।।४।।

चित्पुस्तिकाभीतिकरकरं मुक्ताविभूषणम्।
बालेन्दुशेखरं नेत्रत्रयशोभिमुखाम्बुजम्।।५।।

ध्यात्वैवं पूर्णचन्द्रात्मकर्णिकामध्यसंगतम्।
ध्यायेदधो रक्तनिभं सहस्त्रं(?स्र)छदपङ्कजम्।।६।।

ऊर्ध्वास्यं तत्कर्णिकायां कुलकुण्डसमाश्रयाम्।
तडित्कोटिनिभां कुण्डलिनीं तन्तुतनीयसीम्।।७।।

ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां प्रसुप्तभुजगाकृतिम्।
सार्धत्रिवलयोपेतां वायुनोत्थाप्य सत्वरम्।।८।।

चक्रभेदनमार्गेण नीत्वोर्ध्वे गुरुमण्डले।
चन्द्रबिम्बे विलाप्याथ तन्निर्गतसुधारसैः।।९।।

संक्षाल्य स्वतनुं चाथ गुरुविद्यां प्रजप्य च।
सम्पूज्य स्तुतिभिः स्तुत्वा हृदि कुण्डलिनीं पुनः।।१०।।

आनीय देवतारूपां ध्वात्वा सम्पूज्य मानसैः।
प्रजप्य स्तुतिभिः स्तुत्वा नद्यादौ स्नानमाचरेत्।।११।।

त्रिकोणमण्डले तोये ध्यात्वा देवीं यथाविधी(?धि)।
तत्र तीर्थं समावाह्य सूर्यमण्डलमध्यतः।।१२।।

तेनाभिषिञ्च(?ञ्च्य) कुम्भाख्यमुद्रया मूर्ध्नि सप्तधा।
ध्यात्वा तीर्थं देवतात्ममयं तत्रावगाह्य च।।१३।।

परिधायांशुकं फाले कृत्वा भस्म त्रिपुण्ड्रकम्।
कुर्यात् सन्ध्योपासनं तु प्राङ्मुखः शुद्धमानसः।।१४।।

आदावाचमनं कुर्यात् स्वाहान्तैस्तत्त्वनामभिः।
आत्म-विद्या-शिवाख्यातं तत्त्वत्रितयमुच्यते।।१५।।

सर्वान्ते सर्वतत्त्वं स्याच्चतुर्धाचमनं स्मृतम्।
स्नानसन्ध्यापूजनादौ तथा नैमित्तिकादिषु।।१६।।

पादप्रक्षालनान्ते च छिंको(?छिक्को)द्गाराद्यथ[:]सृतौ।
उच्छिष्टस्पर्शने चैव कुर्यादाचमनं बुधः।।१७।।

श्रोत्राचमनमेव स्याच्छिंकीदी(?च्छिक्कादि)षु च भार्गव।
विधानं शृणु तस्यैवं दक्षश्रोत्रं सकृत् स्पृशन्।।१८।।

स्वस्वमूलसमावृत्त्या श्रोत्राचमनमीरितम्।
मोहादनाचम्य तु वै यः कुर्यात् पूजनादिकम्।।१९।।

तस्य सर्वं फलं घ्नन्ति दैत्या ह्युच्छिष्टभोजनाः।
प्राणायामं ततः कुर्यात् प्राणमाकृष्य शक्तितः।।२०।।

त्रिर्मूलं समनुस्मृत्य त्यजेदितरमार्गतः।
ततः संकल्पयेत् कर्मकालं देशमनुच्चरन्।।२१।।

एतावत् सर्वकर्मादौ कर्तव्यं फलहेतवे।
ततो मूलस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्याद्यथाविधि।।२२।।

मूलविद्यामविन्यस्य स्वाङ्गे साधकपुङ्गवः।
न फलं प्राप्नुयात् सम्यक् कृतस्यापि तु कर्मणः।।२३।।

ऋष्यादिराद्यस्तत्र स्याद् बीजाद्यस्तु द्वितीयकः।
करन्यासस्तृतीयः स्यादङ्गन्यासश्चतुर्थकः।।२४।।

एवं चतुर्विधा(?धो) न्यासः सर्वमन्त्रेषु वै भवेत्।
आद्यद्रष्टा तु मन्त्राणामृषिस्तत्र पृथक् पृथक्।।२५।।

गुरुत्वान्मूर्ध्नि तत्स्थानं मन्त्रवर्णाधिदेवता[:]।
छन्दस्थानं मुखं योग्याद्देवता हृदि संस्थिता।।२६।।

मन्त्रवाच्यात्मिका तेन देवता हृदि विन्यसेत्।
बीजवर्णात्मना दृष्टा[:] पूर्वं मन्त्रा महर्षिभिः।।२७।।

तेन कारणभूतेन मन्त्रा दृष्टा अनन्तरम्।
तस्मात्तन्मन्त्रबीजं वै मन्त्रकारणभावतः।।२८।।

मन्त्रसामर्थ्यरूपेण फलदाने सशक्तितः।
तद्वर्णे मन्त्रशक्तिस्तु तेन शक्तिरितीरितः।।२९।।

न गच्छेच्छक्तिरन्यत्र चेति शक्तिस्तु कीलिता।
यस्मिन् वर्णे स वर्णस्तु कीलकं समुदाहृतम्।।३०।।

बीजस्थानं गुह्यमिति तत्र बीजं प्रविन्यसेत्।
शक्तिस्तु गमने दृष्टा तेन शक्तिस्तु पादयोः।
नाभौ प्राणः कीलितो वै तस्मात्तत्र तु कीलकम्।।३१।।

बीजवर्णात्मना दृष्टा पूर्वं मन्त्रा महर्षिभिः।
ऋष्यादिन्यासहीनस्तु गुर्वादिद्रोहहेतुतः।।३२।।

बीजादिहीनस्तद्वच्च न फलं बिन्दते क्वचित्।
करस्तु न्यासयोगेन मन्त्रात्मत्वाद् विशुद्ध्यति।।३३।।

ततः पूजा-जपादौ तु विनियुक्तः फलप्रदः।
अङ्गन्यासमृते विघ्नैर्भूतैर्भूयोऽभिभूयते।।३४।।

तस्मादङ्गन्यासयोगाद्रक्षणं सर्वतो भवेत्।
युद्धे तु हृदयं चादौ रक्षणीयं प्रयत्नतः।।३५।।

एवं मूर्धापि तु शिखा शेखरस्थानभावतः।
तद्भङ्गे मानभङ्गः स्यादतस्तद्रक्ष्यमेव हि।।३६।।

कवचं चाङ्गसन्त्राणं नेत्रं स्यात्करणोत्तमम्।
अस्त्रं च बाह्यकरणमित्येतन्न्यासयोगतः।।३७।।

संरक्ष्य पश्चाद्दिग्बन्ध दशदिग्रक्षणं भवेत्।
ऋष्यादींस्तु नमोऽन्तेन विन्यसेन्मस्तकादिषु।।३८।।

अङ्गुष्ठाभ्यां नमस्त्वेवमङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत्।
कनिष्ठान्ते करतलकरपृष्ठान्नमो वदेत्।।३९।।

हृदयाद्ये नमः स्वाहा वषड् हुं वौषडेव च।
फट् च संयोज्य विन्यस्य दिग्बन्धं छोटिकाख्यया।।४०।।

एवं विन्यस्य हृदये ध्यायेच्छ्रीत्रिपुरां पराम्।
जपाकुसुमशोणाङ्गीं त्रिणेत्रां चन्द्रशेखराम्।।४१।।

कामेश्वराङ्कनिलयां प्रसन्नवदनाम्बुजाम्।
पद्मरागाङ्कुशं पाशं प्रवाललतिकोद्भवम्।।४२।।

ऊर्ध्वयोर्हस्तयोः पञ्च बाणांश्चापमधो द्वयोः।
नीलोत्पलमशोकं च भ(म)ल्लिका चूतमेव च।।४३।।

कमलं चेति बाणाः स्युश्चापं पुण्ड्रेक्षुसम्भवम्।
एवं तोये यन्त्रराजे ध्यात्वा श्रीत्रिपुराम्बिकाम्।।४४।।

मूलेन मार्जयित्वा त्रिर्मूर्ध्नि तर्पणमुद्रया।
गायत्र्याऽर्घ्यं प्रदद्यात् त्रिस्तर्पयेदपि च त्रिशः।।४५।।

ध्यात्वेन(?त्वैवं) मण्डले देवीं त्रिरर्घ्यं प्रदिशेत् पुनः।
मार्तण्डभैरवाख्याय सन्तर्प्यापि त्रिधा पुनः।।४६।।

गायत्रीं प्रजपेन्मूलविद्यामपि शतं शतम्।
अन्ते सूर्याभिमुखत उपतिष्ठेत् पराम्बिकाम्।।४७।।

सन्ध्यायामनुपस्थानाद् देवता कुप्यति द्रुतम्।
आगमे नमने श्रेष्ठ(?ष्ठं) प्रत्युत्थानं समर्हणम्।।४८।।

लोकसिद्धन्याय एष तस्मादावश्यकं त्विदम्।
वैदिकैस्तान्त्रिकैर्मन्त्रैर्वोपस्थानं समाचरेत्।।४९।।

एवं सन्ध्यामुपासित्वा गृहमागत्य साधकः।
पूजामन्दिरमाविश्य चात्मशोधनमाचरेत्।।५०।।

।। इति श्रीत्रिपुरारहस्ये चर्याखण्डे एकादशोऽध्यायः।।११।।



द्वादशोऽध्यायः

अथ राम जपविधिं वक्ष्यामि नियतं शृणु।
एवं विन्यस्तगात्रो वै देवतामय आस्थितः।।१।।

रश्मिमालामनुस्मृत्य सकृदन्यान्मनूनपि।
जपमालां समाश्रित्य प्रजपेन्मुख्यमन्त्रकम्।।२।।

कालत्रयं सहस्रं वा द्विकालं त्वेकदाऽपि वा।
शतत्रयं वापि शतं शक्त्या भक्तियुतो जपेत्।।३।।

आपत्तिष्वथ रोगेषु पथि कार्यान्तिरेषु च।
यथाशक्त्या कर्म कुर्यात् तेन दोषो न विद्यते।।४।।

कर्मलोपस्य दोषो न स्याद[ा]पत्तिमुखेषु वै।
जपस्तु न परित्याज्यः सर्वथा तं समाचरेत्।।५।।

शतार्धं वापि पादं वा जपेत् त्रिर्वा महापदि।
अपवित्रः पवित्रो वा गच्छन् वापि स्थितोऽपि वा।।६।।

सुप्तो वाऽप्युपविष्टो वा मनसा वचसाऽपि वा।
जपेच्छक्त्यनुरोधेन जपन्न(?पं न)हि विलोपयेत्।।७।।

आपत्त्यादौ जपेनैव सर्वं कर्मकृतं भवेत्।
न त्यजेत् सर्वथा जापमादेहस्मृतिसम्भवात्।।८।।

आपदादिष्विति प्रोक्तं यदि शक्तः कथञ्चन।
कर्मलोपं प्रकुर्याद् वै तस्यानर्थः पदे पदे।।९।।

नास्तिकं तं प्रोक्तदुःखे मातृकाः पालयन्ति वै।
तस्मात् कर्म यथाशक्त्या साङ्गोपाङ्गं समाचरेत्।।१०।।

ऋष्यादि न्यस्य ध्यात्वा च देवतां मनसाऽर्चयेत्।
शक्त्या भक्त्या समभ्यर्च्य जपं कुर्यात् समाहितः।।११।।

जपमालां समाश्रित्य संस्कृतां प्रजपेत् क्रमात्।
तत्र वर्णमयी माला चोत्तमा संप्रकीर्तिता।।१२।।

मणिमाला मध्यमा स्यात् पर्वमालाऽधमा स्मृता।
आदिवर्णात् क्रमात् मन्त्रान् ते(?तान्) सबिन्दून् समुच्चरेत्।।१३।।

ळान्तमेकैकशो भूयो ळादीनां तानपि क्रमात्।
अन्ते स्वरान् सप्तवर्गान् प्रजप्याष्टोत्तरं भवेत्।।१४।।

जपेऽनन्तगुणं पुण्यं वर्णमालां समाश्रयेत्।
रत्नात्मकैः स्फटिकैर्वा रुद्राक्षैः पुत्रजीवकैः।।१५।।

कमलाक्षैः शङ्खजैर्वा गजदन्तसमुद्भवैः।
पुण्यकाष्ट(ष्ठ)कृतैर्वापि मणिभिर्जपमालिकाम्।।१६।।

सौवर्णै राजतैर्वापि सूत्रैस्ताम्रकृतैरपि।
कार्पासैर्वाल्कजैर्मुञ्जाभवैः कुशकृतैरपि।।१७।।

पट्टसूत्रैरपि भवेत् कार्पासादिचतुष्टयम्।
द्विजनिर्मितमेव स्यादन्यत्र नियमो नहि।।१८।।

स्थूलादिसूक्ष्मपर्यन्तं(?न्तान्) सर्पाकारतया मणीन्।
आरोपयेद् वा मध्ये तु स्थूलं गोपुच्छवद् भवेत्।।१९।।

एवं सूत्रे मणीन् सम्यङ् निवेश्य ग्रन्थयेद् दृढम्।
मणीनामन्तरालेषु मेरुं स्थूलं तु सर्वतः।।२०।।

अन्ते निवेश्य तं मूर्ध्नि ग्रन्थिं कृत्वा ततः परम्।
संस्कृत्य प्रजपेदुक्तसंख्यया मालया क्रमात्।।२१।।

अथवा प्रजपे[त्] सर्वमालया भृगुवंशज।
अनामामध्यपर्वादिमूलपर्वक्रमेण तु।।२२।।

कनिष्ठामूलतस्तर्जनीमूलान्तं पृथक् पृथक्।
पुनर्व्युत्क्रमतश्चापि संस्पृशन् जपमाचरेत्।।२३।।

इयमुक्ता पर्वमाला संख्यया जपमाचरेत्।
जपं यः संख्यया हीनं करोत्यतिसुमूढधीः।।२४।।

कोटिकोटिजपेनापि न फलं बिन्दते क्वचित्।
अतस्तु गणनापूर्वं जपं कुर्यात् सुसाधकः।।२५।।

उपासनं स्नानसन्ध्यापूजापारायणादिकम्।
तेषु मुख्यतमस्त्वेष जप एव न चेतरः।।२६।।

देहे प्राणो यथा मुख्यस्तथोपास्तावयं स्मृतः।
साधकः सर्वदा तेन जपं कुर्यात् समाहितः।।२७।।

अत आपत्सु जपत एव सर्वं कृतं भवेत्।
जपेऽपि मानसः श्रेष्ठो ध्यानयुक्तस्ततोऽधिकः।।२८।।

यावद्बाह्यक्रियाहीनं तावदुत्तममीरितम्।
उपासनाख्यं यत्कर्म ज्ञानमेव तदीरितम्।।२९।।

परिणामे यतस्त्वेतज्ज्ञानरूपं भवेद् ध्रुवम्।
अग्नौ हुतं भवेदग्निमयमेवमुपासनम्।।३०।।

समर्पितं देवतायां गुह्यं तद्देवतात्मकम्।
निष्कामत्वेन यत्कर्म क्रियते तद्विमुक्तिदम्।।३१।।

एवं यत्कर्म सम्यग् वै देवतायै समर्पितम्।
तद्गुह्यं जायते तस्मादतिगुह्यं विमुक्तिदम्।।३२।।

जपस्तत्रातिगुह्यः स्याद् अतस्तन्मुक्तिसाधनम्।
एवमेष जपविधिर्जामदग्न्य समीरितः।।३३।।

।। इति श्रीत्रिपुरारहस्ये चर्याखण्डे जपविधिनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।



त्रयोदशोऽध्यायः

अथ पूजाविधिं वक्ष्ये शृणु राम समाहितः।
पूजनादेव सन्तुष्टा भवति त्रिपुराम्बिका।।१।।

नित्या नैमित्तिका चैव सा द्विधा संप्रकीर्तिता।
दिवा नित्यां प्रकुर्वीत रात्रौ नैमित्तिकां तथा।।२।।

नित्यां कृत्वैव पूजां वै कुर्यान्नैमित्तिकाह्वयाम्।
चक्रराजे[ऽ]त्युत्तमा सा पूजाऽन्यत्र तु मध्यमा।।३।।

पूजयेदन्यत्र तदा यदि चक्रं न लभ्यते।
मूर्त्यादौ पुस्तके वापि चक्रालाभे तु पूजयेत्।।४।।

स्थावरे यन्त्रमूर्त्यादौ पूजनं सर्वतोऽधिकम्।
लब्धा(?ब्ध्वा) स्थिरं तु यन्त्राद्यं मोहाद् यो न प्रपूजयेत्।।५।।

तमल्पभाग्यं जानीयात् पुरुषार्थपरिच्युतम्।
यन्त्रं तु सर्वतः श्रेष्ठं शिवशक्तिमयत्वतः।।६।।

बिन्दुस्त्रिवसुदिक्पङ्क्तिमनुकोणानि वै क्रमात्।
वसु षोडश पत्रे च वृत्तत्रयसुगर्भिते।।७।।

भूपुरत्रितयद्वारचतुष्टयविराजितम् ।
एतद् यन्त्रं महाश्रेष्ठं पुरुषार्थैकसाधनम्।।८।।

त्रिकोणादिन्द्रकोणान्तं शक्तिचक्राणि भार्गव।
पञ्चान्यानि तु चक्राणि राम शैवानि वै क्रमात्।।९।।

वेदाङ्गुले त्रिकोणं स्यात् पूर्वस्मिन् तस्य बाह्यतः।
चतुष्कोणं भवेद् रामाङ्गुलक्षेत्रं तु भार्गव।।१०।।

अथोभयत्राष्टकोणं षडङ्गुलमिते भवेत्।
रुद्राङ्गुले तु दिक्कोणमन्यत् सूर्याङ्गुले भवेत्।।११।।

ततः सूर्याङ्गुलैश्चेन्द्रकोणं तद्बाह्यतः क्रमात्।
सकर्णिकं नागपत्र(?त्रं) भवेदष्टादशाङ्गुले।।१२।।

अष्टादशाङ्गुले तद्वन्नृपपत्रं सकर्णिकम्।
सकर्णिकं च भूबिम्बं सद्वारं द्वादशाङ्गुले।।१३।।

षण्णवत्यङ्गुलं यन्त्रमेवं सर्वोत्तमं भवेत्।
इदं श्रीत्रिपुरादेव्या[ः] स्थानं प्रियतमं भवेत्।।१४।।

अत्र सन्निहिता नित्यं सर्वावरणसंयुता।
पूज्या[ऽऽ]वृत्तिः(?ति)समायुक्ता त्वन्यथा न प्रसीदति।।१५।।

यथा सूर्यस्य किरणा(?णाः) सर्वतः समवस्थिता[ः]।
सूर्यात्मभूतास्तस्यांशाः सर्वलोकप्रसादकाः।।१६।।

शीतान्धकाररोगादिनाशकाः प्राणिनां तथा।
त्रिपुरायाः पराशक्तेः परिवाराख्यदेवताः।।१७।।

लोकवाञ्छार्थदानाय नियुक्तास्तु तथैव ताः।
तदंशभूताः सर्वा वै तस्मात् पूज्या यथाविधि।।१८।।

किरणं(?णा)कृतिस्तत्राद्या त्रिपुरात्मसमुद्भवा।
मध्यत्र्यस्रस्थिता भक्त्या पूजिता वाञ्छितार्थदा।।१९।।

नित्याः पञ्चदश प्रोक्ता[ः] स्थितिरूपा[ः] क्रमेण तु।
कामेश्वर्यादिचित्रान्ताः समाना मूलविद्यया।।२०।।

त्रिकोणस्य त्रिरेखासु पञ्च-पञ्चतया स्थिता[ः]।
तासां मूलस्वरूपेण महानित्या तु मध्यगा।।२१।।

त्र्यस्रपृष्ठे तु गुरवः पूज्याः श्रीत्रिपुरात्मकाः।
मित्रीशषष्ठीशौड्डीश[ा] आद्याचार्याः शिवाङ्गजाः।।२२।।

कूटोपासनसंप्राप्तमहेश्वरपदा इमे।
तत्र रेखात्रये पूज्या भार्गवैकैकशः क्रमात्।।२३।।

यत्र(?त्रय) एते नाथरूपा नवात्मकतया स्थिताः।
ओघरूपास्तये(?थै)वोक्तास्तदंशत्वेन संस्थितेः।।२४।।

गुरवस्त्रिप्रकाराः स्युर्दिव्या[ः] सिद्धाश्च मानवाः।
देवसिद्धमनुष्येषु तत्तद्विद्याप्रवर्तकाः।।२५।।

सदाशिवांशभूतास्ते सर्वज्ञदिव्यमूर्तयः।
मुनिवेदेभसंख्याता महापुरुषसंज्ञिताः।।२६।।

सिद्धानां सिद्धिदा यस्मात् सिद्धसिद्धास्ततस्त्विमे।
एतान् सम्पूज्य तत्पश्चात् पूजयेत्तु नवावृतिम्।।२७।।

तत्रादावाद्यरेखायां भूपुरस्य तु संस्थिताः।
अणिमाद्याः सिद्धयो वै दशदिग्देशके स्थिताः।।२८।।

अणिमाऽणुत्वमित्युक्तं लघुत्वं लघिमा तथा।
महिमा स्यान्महि(?ह)त्वं तु स्वातन्त्र्यं चेशिता मता।।२९।।

वशित्वं च वशीकारस्त्वलंभावः प्रकामता।
भुक्तिः सकलभोगो हि यथेच्छाखिलवाञ्छितम्।।३०।।

प्राप्तिरप्राप्तलब्धिर्हि कामस्तु सुखसाधनम्।
तास्त्वेतात्सि(?ताः सि)द्धिदाः प्रोक्तास्तद्रूपत्वादथाऽपरा।।३१।।

द्वितीयरेखासंस्थाता(?स्ता) ब्राह्म्याद्यास्त्वष्टमातृकाः।
ब्रह्मादिशक्तिरूपास्ता अष्टौ दिक्क्रमसंस्थिताः।।३२।।

महालक्ष्मीर्नृसिंहस्य शक्तिरुक्ता भृगूद्वह।
दशमुद्राः स्थितास्तद्वत् तृतीयस्यां क्रमेण तु।।३३।।

त्रिपुराया मुदं यस्मात् प्रयच्छन्ति ततस्तु ताः।
षोडशच्छदसंस्थानाः कामाकर्षिणिकामुखाः।।३४।।

भक्तेषु कामाद्याकर्षशीला स्युर्देवतात्मिकाः।
अष्टपत्रे स्थिताऽनङ्गकुसुमाद्या मनोहराः।।३५।।

कामप्रसादनपरास्तन्नाम्ना राम संस्थिताः।
मनुकोणे स्थिताः सर्वसंक्षोभिण्यादिशक्तयः।।३६।।

भक्तेषु कामभेदानां प्रदाननिपुणास्तु ताः।
दशारे सिद्धिभेदादिप्रदा वै भजतां नृणाम्।।३७।।

एवमन्तर्दशारेऽपि सर्वज्ञाद्याः स्थिताः पराः।
वशिन्याद्या नागकोणे त्र्यरे कामेश्वरीमुखाः।।३८।।

बिन्दौ श्रीत्रिपुरा देवी संस्थिता सर्वरूपिणी।
एवंविधे यन्त्रराजे पूजयेत् त्रिपुराम्बिकाम्।।३९।।

अथवा ध्यानसदृशीं मूर्तिं कृत्वा तु पूजयेत्।
यन्त्राभावे तु सर्वत्र यन्त्रं ध्यात्वा तु पूजयेत्।।४०।।

मूर्ति[ः] ध्येया बिन्दुमध्ये परितो यन्त्रराजकम्।
कुण्डलिन्यां वाऽपि पूज्या शालिग्रामेऽपि वा भवेत्।।४१।।

एवंविधं तु यन्त्राद्यं पीठे संस्थाप्य पूजयेत्।
स्वर्णादिधातुजं पीठं मनोहरतरं शुभम्।।४२।।

आयसं सीसजातीयं मृण्मयं परिवर्जयेत्।
पाषाणं मणिजातीयं शङ्खादिसदृशं शुभम्।।४३।।

श्वेतादिवर्णं जानीहि नान्यच्छ्रीपीठिकाविधौ।
एवंविधं पीठगतं यन्त्रं स्वपुरतो न्यसेत्।।४४।।

पीठे मण्डूकादिपीठदेवताः पूजयेत् क्रमात्।
तत्र देवीं समावाह्य साधिताघ्यैंः प्रपूजयेत्।।४५।।

।। इति श्रीत्रिपुरारहस्ये चर्याखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।



चतुर्दशोऽध्यायः

अथार्घ्यसाधनविधिं वक्ष्ये भार्गव संशृणु।
आदौ पूजागृहद्वारे पूजयित्वाऽऽगमोक्तवत्।।१।।

पूजागृहान्तराविश्य भूमिं संशोध्य न्यस्य च।
संकल्पार्घ्यविधिं कुर्यादागमोक्तेन वर्त्मना।।२।।

संशोध्य गन्धपुष्पाद्यैरभ्यर्च्य सुविधानतः।
तोयेन मण्डलं कृत्वा तत्र पात्राणि संन्यसेत्।।३।।

देवतापीठपुरतः उदग्दक्षिणभागयोः।
कुम्भं चापि विशेषार्घ्यं स्वर्णरौप्यशिलाभवम्।।४।।

हस्तिदन्तखड्गशृङ्गभवं वा पात्रमुत्तमम्।
नारिकेलाऽलाबुजं वा काचमृण्मयमेव वा।।५।।

कुम्भाऽन्यूनं विशेषार्घ्यं साधारं शोधयेत् क्रमात्।
वृत्तं च चतुरस्रं च त्रिकोणं वापि मण्डलम्।।६।।

तयोर्मध्ये तु सामान्यमर्घ्यं शङ्खं निधापयेत्।
तत्सामान्यतोयपूर्णं साधयेत् तन्त्रवर्त्मना।।७।।

कुम्भं चापि विशेषार्घ्यमष्टगन्धसुवासितैः।
विशेषतोयैः संशुद्धैः पूरयेदमृतात्मकैः।।८।।

मुख्याभावे चानुकल्पैरेव पूजां समाचरेत्।
असम्भवेऽप्यशक्तौ वा ग्राह्यं तदनुकल्पकम्।।९।।

शापमोचनसंस्कारान् मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः।
कुर्यदेवानुकल्पेऽपि न चेच्छाय(?प)मवाप्नुयात्।।१०।।

अर्घ्यस्योत्तरदिग्भागे योगिनी लोहितांशुका।
अनर्घ्यरत्नाभरणा पद्मरागसमप्रभा।।११।।

एवं विशेषकलशहस्तां सम्यक्सुवासिनीम्।
सम्पूज्य ध्यात्वा तद्धस्तादादाय कलशं ततः।।१२।।

संस्कृत्य पूरयेदर्घ्यं तेन सम्पूजयेत् पराम्।
अभिमन्त्रणमेवात्र शोधनं समुदाहृतम्।।१३।।

जपं(?प)स्त्वालभ्य(?म्भ)मन्त्राणामभिमन्त्रणमुच्यते।
अर्घ्याधारेष्वग्निकलाः पूजयेत् प्राग्दिगादितः।।१४।।

पात्रे तद्वत् सूर्यकलास्तोये सोमकलाऽ(?अ)पि।
कुम्भे पञ्चब्रह्मकलाऽ(?अ)पि पूज्याः क्रमेण तु।।१५।।

ततस्तु पीठपूजान्ते त्वात्मार्घ्यं स्वात्मनः पुरः।
संसाध्य तेन स्वगुरून(?न्) मूध्नी(?र्ध्नी)ष्ट्वा जुहुयाद्धविम्।।१६।।

ततस्तूल्लसितस्वान्तो विन्यस्य न्यासजालतः।
देवतां स्वान्तराराध्य संयोज्य परमे शिवे।।१७।।

तत्प्रकाशात्मकं तेज आवाह्य यन्त्रराजके।
अभ्युक्ष्य शङ्खतोयेन प्राणस्थापनमाचरेत्।।१८।।

प्राणस्थापनहीनं तु निष्प्राणं पूजनं भवेत्।
स्थावरे यन्त्रमूर्त्यादौ न प्राणस्थापनं भवेत्।।१९।।

नावाहनं न चोद्वासस्तत्र सन्निहिता सदा।
देवता तत्र तस्मात्तु न तत्राऽऽवाहनादिकम्।।२०।।

चरं चापि प्रतिष्ठाप्य यन्त्राद्यं स्थी(?स्थि)रमेव च।
चरेत् त्वावाहनं तद्वत् प्राणस्थापनमेव च।।२१।।

प्रत्यहं स्याद् विसर्गश्च स्थी(?स्थि)रे नास्ति विसर्जनम्।
सकृदावाहनं तद्वत् प्राणस्थापनमेव च।।२२।।

स्थी(?स्थि)रयन्त्रप्रतिष्ठायाः फलमक्षयमुच्यते।
यावदिच्छेत् तावदयं श्रीपुरे निवसेद् ध्रुवम्।।२३।।

पर्यन्तं बिन्दुचक्रस्य गतिरव्याहता भवेत्।
पूज्यो निधिमुखानां चाप्येष सर्वत्र जायते।।२४।।

अन्ते श्रीत्रिपुरादेव्याः स्वरूपे प्रविशेद् ध्रुवम्।
तत्रापि शिवलिङ्गस्थं यन्त्रं संस्थापयेत्तु यः।।२५।।

स साक्षात्त्रिपुराकारो जीवन्नेव न संशयः।
तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते जमदग्निज।।२६।।

तस्य पूजनमात्रेण त्रिपुरा पूजिता भवेत्।
यतस्त्रिमूर्तिरूपं तल्लिङ्गं स्यात् सर्वतोऽधिकम्।।२७।।

त्रिमूर्तिरूपं तद्यस्मात् तुरीयं चक्रनायकम्।
तस्माद् व्यष्टिसमष्ट्यात्मलिङ्गस्थं चक्रनायकम्।।२८।।

अतस्तत्र तु पूजाया महाफलमुदाहृतम्।
तत्रादौ तु महादेवं सम्पूज्याऽऽगमवर्त्मना।।२९।।

ततस्तु त्रिपुरां देवीं पूजयेत् परमेश्वरी[म्]।
अन्यथा त्रिपुराद्रोहाद् विहत[:] स्यात् पदे पदे।।३०।।

तत्र राम प्रतिष्ठाऽपि(?ष्ठां च) पूर्वं कृत्वा महेशितुः।
ततः कुर्याद्देवताया विधानेन यथोक्ततः।।३१।।

अप्रतिष्ठापितैर्यन्त्रैर्मूर्तौ र्वा(?वाऽ)न्यत्र कुत्रचित्।
विधानेन पूजयापि न पूजाफलमश्नुते।।३२।।

एव(?वं) लिङ्गमसंस्थाप्य यन्त्रं संस्थापयेत् क्रमात्।
तथा संस्थाप्य वा लिङ्गं न यन्त्रं स्थापयेच्च यः।।३३।।

प्रमादादालस्यतो वा महादोषमवाप्नुयात्।
तस्मादस्थापितं यन्त्रे लिङ्गे वा पूजनं कृतम्।।३४।।

हेलनं तद्देवतायाः तस्मात् पापमवाप्नुयात्।
तस्माद्यन्त्रं तथा लिङ्गं मूर्तिं वापि विधानतः।।३५।।

संस्थाप्यैवाऽर्चयेद् धीमान् पूजादिफलहेतवे।
स्थावरं यदि लिङ्गं स यन्त्रं कर्तुमिच्छति।।३६।।

तदा चरप्रतिष्ठां तु लिङ्गे कृत्वा ततः परम्।
राम स्थी(?स्थि)रप्रतिष्ठां वै यन्त्रे कुर्याद्विधानतः।।३७।।

चरे लिङ्गेऽप्येवमेव प्रतिष्ठां चरसंज्ञिताम्।
केवले शिवलिङ्गे तु स्थापनं स्यान्निरर्थकम्।।३८।।

एवं चरे स्थिरे वापि ज्ञात्वा सम्पूजयेत् क्रमात्।
अन्यथा पूजयन् देवीं विनाशं प्राप्नुयाद् द्रुतम्।।३९।।

एवं चरे स्थिरे वापि ध्यात्वाऽऽवाह्य तु देवताम्।
पूजयेदुपचारैस्तु राम शक्त्यनुरोधतः।।४०।।

प्राणान् संस्थाप्य तत्पश्चात् पुष्पाञ्जल्या प्रपूजयेत्।
करसम्पुटयुग्मेन पुष्पाक्षतसमर्पणम्।।४१।।

पुष्पाञ्जलिप्रपूजोक्ता देवताप्रीतिदायिनी।
आसनं कल्पयामि इ(?मी)ति नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरन्।।४२।।

आसनं कल्पयेदग्रे स्वर्णरौप्यादिनिर्मितम्।
एवमन्योपचारेषु मन्त्रं युक्त्या प्रयोजयेत्।।४३।।

मन्त्रादौ तु चतुस्तारं योजयेत् सर्वकर्मसु।
तारो ब्रह्ममयः प्रोक्तो भा(वा)ग्भवं सूर्यमण्डलम्।।४४।।

अग्नीषोमात्मकं माया लक्ष्मीश्चापि क्रमाद्भवेत्।
वाग्भवं वाङ्मयत्वेन ब्रह्मशक्तिरुदीरितम्।।४५।।

लज्जा तु वैष्णवी शक्तिर्लक्ष्म्याः सर्वत्र गोपनात्।
श्रीर्विषं संहृतिकरं रुद्रशक्तिस्ततो भवेत्।।४६।।

शक्तीनां मण्डलानां च त्रितयं यत्त्रिबीजगम्।
तत्समष्टिपरं ब्रह्म प्रणवार्थ उदाहृतः।।४७।।

एवंरूपचतुस्तारयोगान्मन्त्रेषु सर्वतः।
त्रिपुरायाः(?या) ब्रह्मरूपात् तत्सम्बन्धेन कर्मणाम्।।४८।।

तदात्मता समापत्त्या बन्धो मोक्षाय वै भवेत्।
एवमर्थतो ज्ञानतोऽपि महाफलमवाप्नुयात्।।४९।।

अज्ञात्वा मन्त्रवर्णानामर्थं कर्म तु यत्कृतम्।
तद्वृक्षकम्पनादीव कृतमप्यकृतं भवेत्।।५०।।

तस्मादज्ञानपूर्वं तु बालादीनां (यत्?) प्रभाषितम्।
युक्तार्थमप्यफलकं फलनिर्वृत्य(?त्त्य)दर्शनात्।।५१।।

तस्मादर्थज्ञानपूर्वं कृतं कर्म फलावहम्।
एव सर्वत्र पूजादौ अर्थभावनपूर्वकम्।।५२।।

कृतमेव महाश्रेष्ठमन्यथा पशुकर्म तत्।
ततः स्वागतमर्घ्यं च पाद्यमाचमनीयकम्।।५३।।

मधुपर्कमाचमन(?नं) भूयः स्नानाय मण्डपे।
प्रवेशं भूषणानां चाप्यवरोपणमेव च।।५४।।

दन्तधावनकं गण्डूषणमास्यविशोधनम्।
वस्त्रेण प्रोञ्छनं भूय आचामाभ्यङ्ग एव च।।५५।।

केशस्य शोधनं चाङ्गोद्वर्तनं तु सुगन्धिभिः।
उष्णतोयस्नानमथ स्नानं पञ्चामृतैस्ततः।।५६।।

स्नानं फलजलौघैश्च शुद्धतीर्थजलैरपि।
आचामं प्रोञ्छनं केशाङ्गानां केशसुधूपनम्।।५७।।

पुष्पगुच्छभूषणाद्यैर्वेणीग्रथनमेव च।
दुकूलमुत्तरीयं चाचामं भूषा भुवि स्थितिम्।।५८।।

भूषणानां कल्पनं च पादुकारोहणं ततः।
छत्रं चामरयुग्मं च व्यञ्जनद्वन्द्वमेव च।।५९।।

पूजागृहप्रवेशं च कामेशाङ्कोपरोहणम्।
सीमन्तसिन्दूरकं च कस्तूरीतिलकं ततः।।६०।।

सौवीराञ्जनकं चाष्टगन्धमादर्शमेव च।
अक्षतं पुष्पमपि च धूपं दीपमनन्तरम्।।६१।।

नैवेद्यमापोशनं च प्रार्थनं ध्यानमेव च।
पानीयमापोशनं च हस्तक्षालनमेव च।।६२।।

करोद्वर्तनकं गण्डूषणपादनिषेचनम्।
आचामं फलताम्बूले दक्षिणामारतीं ततः।।६३।।

पुष्पाञ्जलिं परिक्रामं नतिं कर्मसमर्पणम्।
कल्पयेत् प्रोक्तविधिना चतुःषष्ट्युपचारकम्।।६४।।

स्वागतं तु वचोरूपं दूर्वागन्धसुमाक्षतैः।
यवसर्षपरत्नैश्च कुशैरर्घ्ययुतं जलम्।।६५।।

दद्यादर्घ्यं हस्तयोस्तु पाद्यं पादयुग(?गेऽ)र्पयेत्।
सुगन्धितोयैराचामं कर्पु(र्पू)रोशीरवासितैः।।६६।।

जलैर्दक्षकरे दद्यात् तथैव मधुपर्ककम्।
दधिक्षौद्रफलैर्युक्तैर्गण्डूषाद्यैः शुभैर्जलैः।।६७।।

सुगन्धितैलमभ्यङ्गं सुगन्धद्रव्यमण्डलैः।
केशानां शोधनं तद्वद् अङ्गोद्वर्तनमेव च।।६८।।

केशधूपचन्दनादिधूपैः सुरभिलै(?तै)र्भवेत्।
चन्दनागरुकाश्मीरकर्पूरककचोरकाः ।।६९।।

गोरोचनजटामांसिकपयश्चाष्टगन्धकम् ।
समग्रतण्डुलभवं रञ्जितं रक्तवर्णकैः।।७०।।

अक्षतं पुष्पमपि च विविधं पत्रमेव च।
रक्तपुष्पं तु सामान्यं सगन्धं वाप्यगन्धकम्।।७१।।

त्रिपुरायाः प्रियं तद्वत् तुलसीबिल्वपत्रकम्।
करवीरं जपां जातीं मल्लिकां मालतीं तथा।।७२।।

पद्मं कोकनदं तद्वत् कुमुदं चासित्यो(?तो)त्पलम्।
सौगन्धिकं तु बकुलं चम्पकं च कुसुम्भकम्।।७३।।

बन्धूकं तगरं चान्यत् सुगन्धं पत्रपुष्पकम्।
त्रिपुरायाः प्रियं तैस्तु पूजिता वाञ्छितार्थदा।।७४।।

चन्दनागरुकर्पूरोशीरमांसीशिलारसैः ।
गुग्गुलप्रमुखैरन्यैः सुगन्धैः सुमनोहरैः।।७५।।

निर्धूमाङ्गारविन्यस्तैर्धूपं (धूपं?) कुर्याद् विचक्षणः।
लोहसीसवि(?क)भिन्ने तु पात्रे मृण्मयकेऽथवा।।७६।।

निक्षिप्य धूपयेन्नोल्कामादायापात्रहस्ततः।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्तोपरि यथेच्छतः।।७७।।

अतैलयुक्तान् दीपांस्तु भ्रामयेद् देवताग्रतः।
दक्षपादादिमूर्धान्तं वामपादावधिः क्रमात्।।७८।।

देवताया जपन् मन्त्रं त्रिवारान्न्यूनतोऽर्पयेत्।
एवं दीपं प्रदर्श्याऽथ दूरे निर्वापयेत्तु तम्।।७९।।

सम्मुखे दीपनिर्वापाद् देवता क्रुद्ध्यति द्रुतम्।
ततो देव्यग्रतः कृत्वा मण्डलं प्रोक्तवर्त्मना।।८०।।

तत्राधारे तु नैवेद्यपात्रं संस्थापयेच्छुभम्।
भक्ष्यौदनपेयलेह्यविशेषद्रव्यसंयुतम् ।।८१।।

निवेदयेद् ग्रासमुद्रां दधानो वामहस्ततः।
प्राणादिमुद्रायोगेन ध्यानपूर्वं निवेदयेत्।।८२।।

पानीयं शीतलं स्वच्छं सुगन्धं तु समर्पयेत्।
नैवेद्य(?द्यं) तद्देशकालसम्भवं स्वस्य यत्प्रियम्।।८३।।

नात्युष्णं नातिशीतं [च] देशकालगुणान्वितम्।
समर्पयेद् देवतायै चान्यथा न प्रसीदति।।८४।।

होमं तदन्ते कुर्वीत(?ता)पूपैर्वाऽप्योदनैरथ।
उल्लिख्य पश्चाद्भागां(?गाः) तु रेखा[ः] त्रेधा च दक्षतः।।८५।।

त्रेधा भूयस्तत्र तोयैः प्रोक्ष्याग्निं निक्षिपेदथ।
दक्षप्रत्यगुदग्दिक्षु प्रत्यङ्नैर्ऋतवायुतः।।८६।।

सेचयेत् शुद्धतोयेन परितश्चापि सर्वतः।
कुर्यात्तु परिषेकं वै कनिष्ठामूलभागतः।।८७।।

अग्नये देवतायै त्रिरङ्गेभ्यः पुनरेव च।
देवतायै च सम्पूज्य देवीमग्नौ तु होमयेत्।।८८।।

होमान्तेषु त्यजेत् तत्तन्नाम्ना होमेषु सर्वतः।
सम्पूज्य देवीं भूयस्तु परिषिच्य विसर्जयेत्।।८९।।

ततः कुर्याद् बलेः पूजां देवतोत्तरभागतः।
मण्डले सम्पूज्य सर्वभूतान् या(?पा)त्रे बलिं न्यसेत्।।९०।।

विशेषद्रव्यसंयुक्तं भक्ततोययुतं तथा।
तन्मन्त्रेणाऽर्पयेद् भूयः सम्पूज्योद्वासयेत्तु ताम्।।९१।।

आरार्तिकं ततः कुर्यात् सर्वदुःखप्रशान्तये।
निर्मले धातुपात्रे तु पञ्चवर्णैः प्रकल्पयेत्।।९२।।

पद्ममष्टदलं तत्र डमर्वाकारसुप्रभम्।
पिष्टोद्भवं पाचितं वा हरिद्रोदनजं तु वा।।९३।।

घृतवर्तिसमायुक्तं प्रज्वाल्यादाय पात्रकम्।
त्रिर्भ्रामयेद्देवतायाः पुरतः स्वयमुत्थितः।।९४।।

उत्थातव्यं तत्र सर्वैर्द्रष्टव्यं ज्वलितं च तत्।
स्प्रष्टव्यं चापि हस्तेन सर्वपापापनुत्तमे(?ये)।।९५।।

ततो गुरुं समभ्यर्च्च्य तोषयेत्तु विशेषतः।
ततः कुमारीं बटुकं विशेषैः पूजयेत्क्रमात्।।९६।।

चतुर्थवर्षमारभ्य कुमारी नववर्षतः।
उत्तमा स्यान्मध्यमा तु स्यात् त्रयोदशवर्षतः।।९७।।

अनूढैवोत्तमा ज्ञेया मध्यमोढापि चाक्षता।
अधमान्या समाख्याता हीनाङ्गीं रोगिणीं तथा।।९८।।

विधवां च परित्यज्य कुमारीं पूजयेद् बुधः।
त्रिवर्षादष्टवर्षान्तो बटुकोऽप्युक्तलक्षणः।।९९।।

अहीनवर्णः सम्पूज्य[ः] चाव्रती तत्र चोत्तमः।
ततः सुवासिनीं देवीबुद्ध्या सम्पूज्य वै क्रमात्।।१००।।

विशेषैस्तोषयेत् सम्यग् भक्तिभावयुतो बुधः।
सुवासिन्यप्युक्तलक्ष्मयुतवर्णविभेदिनी ।।१०१।।

. सर्वा[ः] पूज्या विधौ ग्राह्या भक्तिभावसमन्विता[ः]।
दीक्षावत्युत्तमा तत्र तरुणी रूपवत्यपि।।१०२।।
ततः सामयिकान् सर्वान् विशेषैस्तोषयेत् क्रमात्।
भक्तिश्रद्धायुजः सर्वे स्युः सामयिकसत्तमाः।।१०३।।
अर्घ्योद्वासनकं कुर्याद् देवतामपि चोद्वसेत्।
समाप्य पूजामात्मानं ध्यायन् कामकलात्मकम्।।१०४।।
बहिर्व्यापार(?रो) परमो(?तो) भूयाद् राम कथे(?तवे)प्सितम्।
एतत्ते कथितं राम क्रमादर्घ्यादिसाधनम्।।१०५।।

।। इति श्रीत्रिपुररहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दत्तभार्गवसंवादे पूजानिरूपि(प)णं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।



अष्टादशोऽध्यायः

संश्रुतं ते समुक्तं यद् भगवन्नर्घ्यसाधनम्।
श्रोतुं कामकलायास्तु स्वरूपमधुने(?ना) हि तम्।।१।।

सा का कामकला कीदृग्रूपा च गुरुसत्तम।
कथं तदात्मकं ध्येयमात्मरूपं तदीरय।।२।।

इत्यापृष्टो दत्तगुरुराह हृष्टो भृगूद्वहम्।
राम शृणु महागुह्यमेतन्मोक्षप्रसाधनम्।।३।।

[1]एतत्स्वरूपमज्ञात्वा यः करोत्यखिलाः क्रियाः।
न फलं प्राप्यते तासां क्रियाणां परमं [2]शुभम्।।४।।

कृतं तेन तु तत्सर्वं बालक्रीडनसम्मितम्।
यथा देहः प्राणहीनस्तरुर्वा दग्धमूलकः।।५।।

तथा कृतं तदखिलं विधिना च समन्वितम्।
महामन्त्रासंख्यजपैर्न्यासैर्वापि कृतैस्तथा।।६।।

पूजनैर्वा स्तोत्रपाठैः [3]काम्यैर्वा बहुधा कृतैः।
किं भवेन्न विजानीयाद् यावत् कामकलां पराम्।।७।।

एतद्विज्ञाय तत्कर्म कृतं स्वल्पमपीह यत्।
तदनन्तफलं राम सत्यमेव न संशयः।।८।।

शृणु ते संप्रवक्ष्यामि परां कामकलां [4]स्फुटम्।
येयं चितिः सदा भाति भाववर्गक्रमानुगा।।९।।

सा[ऽ]क्रमा चिन्मात्ररूपा त्रिपुरा परिकीर्तिता।
इयमेव शिवो विष्णुर्धाता त्वमहमेव [5]वा।।१०।।

एनामृते न किञ्चित् स्याद् भावो वाऽभाव एव वा।
परा सा ह्यपरिच्छिन्ना परिच्छिन्नाऽपरा भवेत्।।११।।

शिवादिरूपिणी सैव जगल्लीलानिमित्ततः।
परा तु येयं त्रिपुरा चितिमात्रस्वरूपिणी।।१२।।

[6]सा विमर्शस्वरूपा हि यतो न जडरूपिणी।
एतदेवाऽजडत्वं यत्स्वरूपस्य विमर्शने।।१३।।

---

१. एतत्सरूप-स, २. फलम्- स, ३. कामैर्वा- बु.
४. स्फुटाम्-स, ५. च-बु. ६. स- बु.

स्वतन्त्रा सर्वथा यस्माज्जडे नास्ति विमर्शनम्।
स्वातन्त्र्यमेव हि प्रोक्तं विमर्शस्फुरणं तथा।।१४।।

चैतन्यं विक्रिया चेति पराकर्तृत्वमित्यपि।
वाग्रूपता [1]पराहन्ता शक्तिश्चेत्यादिशब्दतः।।१५।।

स्वरूपस्यावभासोऽयमेतैः शब्दैरुदाहृतः[2]।
न जडानां स्वरूपस्य स्वस्मिन् भासनमस्ति हि।।१६।।

यस्माच्चितिं समाश्रित्य भासते नान्यथा क्वचित्।
अतो जडानां यद्भानं परस्यैव हि तद्भवेत्।।१७।।

अत एव पराग्रूपमिदमित्यवभासनम्।
जडानां स्याच्चितेर्नैव स्वातन्त्र्येणावभासनात्।।१८।।

प्रत्यग्रूपमहमिति भानं सर्वत्र दर्शनः।
सोऽहंभावो हि न स्थूलो बाह्यो सम्भवतो भवेत्।।१९।।

पूर्णत्वेन परायास्तु चितेः कस्माद्धि सम्भवेत्।
चेतनानां समाध्यादाविव सूक्ष्मो निगद्यते।।२०।।

सूक्ष्मोऽपि [3]स विभुर्यस्माच्छुद्धसंवित्तिगोचरः।
एषैव च पराहन्ता शुद्धा वाग्रूपिणी स्मृता।।२१।।

वाग्बीजरूपिणी यस्माच्छुद्धसंवित्ति(?द्धि) कीर्तिता।
चेतनेष्वेतदेवास्ति वाग्वृक्षस्य सुबीजकम्।।२२।।

यया तु स्थितया वाचं व्याहरन्ति हि चेतनाः।
एनां बिना शिवे विष्णौ वापि कीटे पतङ्गके।।२३।।

न किञ्चिदस्ति रामैतद्विमृश[4] सूक्ष्मया धिया।
देहादिबुद्धिपर्यन्तमियमेव सुसङ्गता।।२४।।

परिच्छिन्नाहन्तयोक्ता प्रोक्ता विद्यादिनामभिः।
एवं पराहंस्फुरणानुसन्धिः प्रोच्यते बुधैः।।२५।।

[5]परं कामकलाध्यानमात्मनो भृगुवंशज।
शुद्धायास्तु[6] चितेर्भानं पराहंभाव उच्यते।।२६।।

एतदेव समालक्ष्य जीवन्मुक्तो भवेन्ननु[7]।
अपरा या कामकला प्रोक्ता सा प्रोच्यते शृणु।।२७।।

---

१. पराहन्त- स., २. हता- बु. ३. सभुविर्य- स. ४. मृश्य- स.
५. परा- स., ६. यासुचि- बु. ७. न्मनुः- स.

परायामसमर्थो हि तां ध्यायेदपरात्मिकाम्।
इयं या परमा शक्तिर्या पराहन्तयोच्यते।।२८।।

तस्यास्तु वाचकं रूपं स्वरे तुर्यमुदाहृतम्।
तस्यास्त्यंशत्रयं राम [१]बिन्दुर्बिन्दू कला इति।।२९।।

अहन्तायामस्ति [२]चांशत्रयं स्यादेतदेव तत्।
अहकारौ च शून्यं चेत्यंशत्रयमुदाहृतम्।।३०।।

लीनाऽहन्तारूपमयी[३] चितिः परशिवो भवेत्।
स शून्यरूपः पूर्णत्वाद् यदा सृष्ट्युन्मुखो [४]भवेत्।।३१।।

तदा स्वान्तर्विलीना या पराहन्तामयी शिवा।
सूक्ष्मा विमर्शाभिधाना परस्वातन्त्र्यरूपिणी।।३२।।

जातोच्छूना[५] ह्येतदेव सृष्ट्यौन्मुख्यमुदाहृतम्।
स्थूला वर्णद्वयात्माभूच्छून्येनापि सुसङ्गता।।३३।।

शिवशक्तिविभेदात् सा दशेयं परिकीर्तिता।
आद्याद् बिन्दोरधस्तात्तु तिर्यग्बिन्दुद्वयात्मकम्।।३४।।

आद्यो बिन्दुः शक्तिगर्भः शिवो मिश्र उदाहृतः।
सूर्येच्छाशक्तिरूपश्च तिर्यग्बिन्दुद्वयं च यत्।।३५।।

शिवः शक्तिर्विभिन्नो वै अग्नीषोममयं तथा।
ज्ञानक्रियात्मकमपि चैवं बिन्दुत्रयात्मकम्।।३६।।

आद्या निलीनस्वातन्त्र्या चितिः परशिवात्मिका।
उन्मज्जत् स्वातन्त्र्ययुता मिश्रबिन्दुतया स्थिता।।३७।।

सदाशिवात्मिका प्रोक्ता या विसर्गस्वरूपिणी।
बिन्दुद्वयात्मिका सा तु भिन्नस्वातन्त्र्यसंयुता।।३८।।

भवेदीश्वररूपा सा तत्र याद्या परात्मिका।
सा तुर्यबिन्दुरूपा वै सान्तत्येन परा त्रिषु।।३९।।

चित्रस्य भित्तिरूपा सा प्रवाहपरिवर्जिता।
मिश्रबिन्दुर्व्यष्टिबिन्दुरिति बिन्दुत्रयं स्थितम्।।४०।।

---

१. बिन्दुबिन्दु- स., २. चांशं- स. ३. मयि- स.
४. ऽभवत्- बु., ५. च्छून्यत- स.

सूर्याग्नीषोमरूपं तदूर्ध्वाग्रं योनिवत् स्थितम्।
बिन्दुत्रयं परिणतं त्रिकोणाकारतां गतम्।।४१।।

अधोमुखं तत्त्रिकोणं सपरार्धकलात्मकम्।
एवमंशत्रययुतस्तुर्यः स्वर इहोदितः।।४२।।

मिश्रबिन्दु मुखं ध्यायेद् व्यष्टिबिन्दुकुचद्वयम्।
सपरार्धकलां[1] योनिं ध्यायेदेवं क्रमेण तु।।४३।।

मूर्तौ श्रीदेवतायाश्च स्वतनौ च क्रमेण तु।
एतद् गुह्यं ह्यागमेषु राम मुक्त्यैकसाधनम्।।४४।।

य एवं सततं ध्यायेत् स मुक्तिं प्राप्नुयाद् द्रुतम्।
एतत्ते राम सम्प्रोक्तं यत्पृष्टं भवता ननु।।४५।।

।।इति [2]श्रीमदितिहासोत्तमे [3]श्रीमत्त्रिपुरारहस्ये [4]श्रीमच्चर्याखण्डेऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।
[5]श्रीत्रिपुराम्बाऽर्पणमस्तु। श्रीमद्दत्तगुरवे नमः। श्रीसद्गुरुनाथाय नमः।



---

१. केवलां- स., २. 'श्री...त्तमे' नास्ति- स., ३. 'श्रीमत्' नास्ति- स.
४. 'श्रीमत्' नास्ति- स. ५. 'श्रीत्रि.....थाय नमः' नास्ति- स.